जवाहिरातों की चोरी

[कहानी-संग्रह]

लेखक —

नवकुमार शर्मा

मूल्य—आठ आना

सहसा मुसलमान सज्जन का स्वर बदल गया। उसने कहा—"क्या आप मुझे पहिचान नहीं सके ?"

इन्सपेक्टर साहब चकित हो गये। अरे, यह तो रामलोचन है! कुछ भी नहीं जान सके थे। उन्होंने कहा—"इस शक्ल में तुम्हें बिलकुल पहिचान न पाया था। तुम क्या इसी तरह की बनावट से आज-कल घूमते रहते हो ?—क्या कुछ पता मिला ?"

"जब आप मुझे नहीं पहिचान सके, तो और कोई भी नहीं पहिचान सकता। मेरा एक भेष यह है—और भी कोई भेष बना लेता हूँ। पता जो कुछ मिला है, वह अभी कहने लायक नहीं है। आपसे मैं एक बात कहने के लिये आया हूँ। यह जो शोर-गुल हो रहा है—इसे कुछ दिनों तक बन्द रखिये।"

"इससे तुम्हारे काम में कुछ सुविधा होगी ?"

"जी हाँ—बहुत। आप लोग अगर कुछ दिनों के लिए ढील दे दें, तो वे छिपे नहीं रहेंगे। वे सब छिपे बैठे हैं। मैं कोई पक्की खबर पाते ही आपको इत्तला कर दूँगा। उस समय आपकी मदद की आवश्यकता होगी।"

"अच्छी बात है। मैं तलाशी और गिरफ्तारियाँ बन्द किये देता हूँ; फिर तुम जो कुछ कहोगे, वैसा ही करूँगा।"

रामलोचन जाने लगा। कोतवाली के लोग उसे घूर-घूर कर देखने लगे। वे कुछ भी नहीं समझ सके।

× × ×

शहर के एक कोने में गरीबों का मुहल्ला है। खपरैल के मकान अधिक हैं; पक्के मकान इने-गिने हैं। चारों ओर अन-गिनती गलियाँ हैं—साँप की तरह घूम-फिर कर इधर-उधर से निकल गई हैं—गलियाँ मैली, कीच-भरी हुई हैं। सड़क पर

लङ्गोट पहिने या नङ्गे बच्चे खेल रहे थे; मुहल्ले की औरतें गली में खड़ी-खड़ी भद्दी गालियों से एक दूसरे से लड़ रही थीं। कहीं मर्द लोग टाट पर बैठकर ताश या जुआ खेल रहे थे।

एक जगह पर एक पक्का मकान है। मकान बहुत पुराना है और बेमरम्मती की हालत में है। उसके तीन तरफ़ गलियाँ गई हैं। मकान दोमंज़िला है—नीचे और ऊपर मिलाकर सात-आठ कमरे होंगे। ऊपर एक कमरे में खिड़की की बग़ल में एक आदमी गलियों में निगाह जमाये बैठा था—वहाँ से सब दीखता है। नीचे, एक बीच के कमरे में पाँच-छः आदमी बैठे हुए बातें कर रहे थे। वे ऐसे धीमे स्वर से बातें कर रहे थे कि बग़लवाले कमरे से भी उनकी बातें साफ़ सुनाई नहीं देती थीं।

उस मोहल्ले के लोगों का जो पहिनावा है, इन लोगों का भी वैसा ही है। मैली-फटी धोती, नङ्गा बदन, बाल रूखे-सूखे, कई दिनों से हजामत न की हुई। उनमें सभी इकहरे बदन के, मगर ताक़तवर थे, एक गोरा आदमी बहुत मोटा था—उसकी तोंद आगे बढ़ आई थी, उसकी मूँछें बहुत पतली और उसका सिर गंजा था।

इकहरे बदन के लोगों में से एक कह रहा था—"माल कहीं हटाने का चारा नहीं दीखता। बड़ा शोर-गुल मचा हुआ है, डर के मारे कोई ख़रीदना नहीं चाहता। पड़ा सड़ रहा है। रुपया चाहिये—रुपया—! वह सब लेकर क्या चाटूँ?"

मोटे ने कहा—"अब तक तो तुम लोगों ने मुझे माल दिखाया तक नहीं! हिस्सा बराबर होना चाहिये।"

और एक ने कुछ गर्म होकर कहा—"तुम हम लोगों के साथ बराबर हिस्सा कैसे पा सकते हो? तुम्हें कोई डर नहीं था।

पकड़े जाने पर हम लोग क़ैद होते—तुम्हें कोई नहीं पकड़ता।"

मोटा आदमी नाराज हो गया। उसने कहा—"मेरी ही वजह से तुम लोगों को माल मिला। लोहे की संदूक और आलमारियाँ तोड़कर माल लेने में कितनी देर लगती, जानते हो? पास ही कोतवाली थी! हथकड़ी लग जाती!"

एक ने दिक़ होकर कहा—"अरे चुप हो जाओ। आपस में झगड़ा कर रहे हो! गुरदास, तुम न घबराओ, तुम्हें बराबर का हिस्सा मिलेगा। माल मेरे जिम्मे है। मगर वह जब तक न बिके तब तक हिस्सा कैसे बाँटूँ?"

यह आदमी सरदार है। इससे बहस करने का किसीने साहस नहीं किया।

गुरदास ने कहा—"रामलाल सर्राफ़ के पास गये थे?"

"वह अभी लेने का साहस नहीं कर रहा है; कहता है, दो-तीन महीने गम खा जाओ। तुम्हें सब दिखाऊँगा। तुम्हारे जान-पहिचान में कोई विश्वासी आदमी है?"

"है तो, मगर बहुत सावधानी से ये सब बातें छेड़नी चाहिये। हाथों-हाथ अगर रुपया मिल जाय, तो माल छोड़ा जा सकता है।"

"और क्या! नहीं तो वही सब हड़प जायगा।"

सरदार का नाम है—चन्दर। उसने सबसे कहा—"तुम लोग अगर आपस में लड़ाई-झगड़ा करो, तो सब गुड़ गोबर हो जायगा। जितने लोग हम हैं, सबको बराबर हिस्सा मिलेगा। कोई कुछ करे या बैठा रहे! गुरदास का हिस्सा कम किस लिये होगा? और हिस्सा मैं बाँटूँगा—इस मामले में तुम लोग क्यों पड़ रहे हो?"

चन्दर को सभी जानते हैं। बड़ा गुस्सेवर आदमी है। सब चुप रहे।

चन्दर ने कहा—"अभी तुम लोग जाओ। मैं गुरदास के साथ माल बेचने की फ़िक्र करूँ। रुपया मिलते ही हिस्सा बाँटूँगा।"

सभी एक साथ नहीं गये। एक-एक करके निकलकर अलग-अलग गलियों से चले गये। सिर्फ़ चन्दर और गुरदास एक साथ निकले। वे दोनों तेज़ी से एक गली में घुसे। गली के चौराहे पर एक आदमी चुपचाप बैठा हुआ था। उसकी धोती फटी-मैली थी; बदन और सिर में गर्द भरी हुई थी। वह अकेला बैठा-बैठा जाने क्या बड़बड़ा रहा था।

उसे देखकर चन्दर ने कहा—"कहाँ से एक पागल आकर यहाँ जम गया है!"

गुरदास ने कहा—"पागल का क्या ठिकाना! जहाँ मन चाहा बैठ गया।"

उन लोगों की बातें सुनकर पागल उठकर खड़ा हो गया। हाथ बढ़ाकर बोला—"भूख लगी है—पैसे दो।"

उसके सिर पर जटायें हैं; दृष्टि पागल जैसी सूनी; मूँछ-दाढ़ी बड़ी-बड़ी।

चन्दर हँस पड़ा: बोला—"भूख के मामले में पूरा होश है। यह लो—" कहकर उसने एक दोअन्नी फेंक दी।

कुछ दूर जाकर और गली में घुसकर, चन्दर और गुरदास एक छोटे-से मकान के सामने खड़े हो गये। चन्दर किवाड़ खटखटाने लगा। उस खटखटाहट में संकेत था। भीतर से कोई दरवाज़ा खोलकर फिर क्षण भर में कहीं अदृश्य हो गया। गुरदास को एक कोठरी में बैठाकर, चन्दर जाने कहाँ से टीन

का एक बॉक्स ले आया। बॉक्स खोलकर चन्दर ने कहा—"तुमने माल नहीं देखा है—यह देखो।"

गुजराती जौहरी की दूकान लूटकर जो कुछ मिला था, इसी बॉक्स में था। चन्दर ने पूछा—"अन्दाजन कितना मिलेगा?"

गुरदास ने कहा—"यह कैसे कह सकता हूँ? जितना ठीक दाम है, उसका एक-चौथाई भी मिले तो ग़नीमत है। इतने दिनों तक कोई लेना नहीं चाहता था, अब कुछ शोर-गुल कम हुआ है; अब रामलाल सर्राफ़ के पास जाकर कोशिश की जाय।"

"तुम अकेले जाओगे?"

"नहीं, तुम भी मेरे साथ चलो। अकेले जाने पर तुम लोग सन्देह करोगे कि मैं रामचोलन सर्राफ़ से मिलकर रुपया हड़प रहा हूँ।"

दोनों ने सलाहकर यह तय किया कि उसी दिन शाम को रामलाल सर्राफ़ से मिलेंगे।

× × ×

जिस पागल को चन्दर ने एक दोअन्नी दी थी; उसकी ओर उन्होंने घूमकर नहीं देखा। देखने पर कुछ चकित होते। पागल ने चट एक गली की आड़ में जाकर, एक गठरी खोलकर, उसमें से साफ़ धोती, कुर्ता और जूता निकालकर पहिना। फिर दाढ़ी-मूँछ अपने चेहरे से निकालकर, बालों में कंघीकर, टोपी पहनकर निकल आया। यह सब करने में उसे डेढ़-दो मिनट लगा होगा। फिर चन्दर और गुरदास जिधर गये थे उसी ओर वह दौड़ा। कुछ दूर जाते ही उसने देखा—चन्दर और गुरदास एक मकान के अन्दर जा रहे हैं। वह मकान को देखकर दूसरी ओर मुड़ गया।

सन्ध्या होने के बाद चन्दर मकान से निकला। उसके थोड़ी देर बाद एक मुसलमान फ़क़ीर 'मुश्किल-आसान' का चिराग़ हाथ में लिये चन्दर के मकान के सामने चिल्लाता हुआ चला जा रहा था। मकान के सामने आते ही, एक औरत दरवाजा खोल-कर, फ़क़ीर को पैसा देने के लिये आई। फ़क़ीर ने बाँये हाथ से अपनी लालटेन उठाई और दाहिने हाथ से एक रूमाल। रूमाल के कोने में काले धागे से एक छुरे का निशान था।

औरत युवती है। उसका पैसा हाथ ही में रह गया। रूमाल देखकर, डरकर, उसने सन्देह भरी निगाह फेंककर पूछा—"तुमने यह रूमाल कहाँ पाया ?"

फ़क़ीर बोला—"मैं भी तो उसी दल का हूँ। नहीं तो यह रूमाल कहाँ पाता ?"

"तुमने फ़क़ीर का भेस क्यों लिया है ?"

"इस तरह का भेस न लेने पर तुम मेरे सामने नहीं आतीं। तुमसे मैं एक बात कहने के लिये आया हूँ।"

"क्या बात ?"

"वे लोग तुम्हें कुछ रुपये-पैसे देते हैं ?"

"कहाँ देते हैं; कुछ भी नहीं ! क्या मेरा कोई ख़र्च नहीं है ? क्या मुझे कोई चीज ख़रीदने की इच्छा नहीं होती ?"

"मैं भी यही सोच रहा था। यह लो।" फ़क़ीर ने तीस रुपये युवती के हाथ में दिये। पहले तो युवती ने इंकार किया; कहा—"तुम्हारा रुपया मैं क्यों लूँ ?"

"यह रुपया मेरा नहीं है; यह तुम्हारे हिस्से का है। मैंने उन लोगों से कुछ भी न कहकर अपने पास रख लिया था।"

"उन लोगों को अगर पता लग जाय ?"

"तुम्हारे या मेरे न कहने पर कैसे पता लग सकता है ? मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। तुम अगर कह दो तो वे शोर मचायेंगे।"

"मैं क्यों कहूँगी ? कहकर युवती ने रुपया ले लिया।

फ़क़ीर ने कहा—"अभी हाल ही में उन लोगों को बहुत रुपया मिला है, मगर तुम्हें कुछ भी नहीं देंगे। कुछ माल भी शायद इसी मकान में रख छोड़ा है। कहाँ रक्खा है, तुम्हें मालूम है ?"

युवती बोली—"मैं कुछ भी नहीं जानती—वे मुझसे कुछ भी नहीं कहते हैं। अगर पता लगाने के लिये मैं तलाश करूँ, और उनको पता लग जाय, तो मुझे पीटेंगे।"

"वे इसी तरह के हैं ! हृदय में रत्ती भर भी दया या स्नेह नहीं है ! मैं एक बार तलाश कर देखूँ ?"

"और अगर वे आ जायँ तो ?—वे हम दोनों को मार डालेंगे। तुम और यहां खड़े मत रहो—कब आ जायगा, कुछ ठीक नहीं है।"

युवती ने मकान के अन्दर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया। फ़क़ीर स्वर के साथ 'मुश्किल-आसान' चिल्लाता हुआ चला गया।

× × ×

उधर चन्दर और गुरुदास सज्जनों के वेश में रामलाल सर्राफ से मिलने के लिये गये। दुकान में और कोई नहीं था। रामलाल खुद अधेड़ आदमी है; वह दुकान पर बैठा हुआ बही-खाता देख रहा था। उन लोगों को आते देखकर कहा—"पधारिये महाशयजी ! कहिये, क्या हुक्म है ? आपके साथ यह कौन सज्जन हैं ?"

गुरदास ने अपने बड़े-बड़े दाँत निकाल कर कहा—"आप एक व्यापारी हैं; मेरे साझीदार। बाज़ार कैसा है। कुछ माल-वाल लोगे ?"

रामलाल ने कहा—"बाज़ार बहुत मन्दा है भाई, मगर अब कुछ-कुछ सुधरा है। साथ में क्या कुछ है ?"

चन्दर ने कुर्त्ते के अन्दर से कुछ जवाहिरात निकाले। उसने कहा—"सब तो नहीं लाये। अगर लेना हो तो फिर सब लाऊँगा।"

रामलाल की आखें लोभ से उज्ज्वल हो उठीं, मगर अपना भाव दबा कर बोला—"माल लेने में डर मालूम हो रहा है; आज-कल पुलिस की आँखें चारों ओर दौड़ रही हैं।...सब माल लाओ, तो देख कर कह सकता हूँ।"

चन्दर ने कहा—"इन सबों का क्या दोगे ?"

रामलाल ने गहनों को हाथ में लेकर, जाँच कर कहा—"इसका क्या दाम हो सकता है ? सब तोड़-फाड़ कर, अलग-अलग कर और कहीं भेजना पड़ेगा। यहाँ यह नहीं बिक सकता। खुदरा बेचने पर बहुत कम मिलेगा। इन चीजों के लिये मैं सौ रुपया दे सकता हूँ। मगर सब माल न देखने पर कुछ भी नहीं कह सकता।"

गुरदास ने कहा—"तुम क्या कह रहे हो ? सौ रुपया ! एक-एक की क़ीमत पाँच सौ से कम नहीं।"

रामलाल ने नाराजी से कहा—"बाज़ार में जाँच करा लीजिये।"

गुरदास ने कहा—"अरे, नाराज क्यों हो रहे हो ! ज़रा सोचो तो सही। तुम तो जानते हो, हम लोग और किसीके पास नहीं जाते।"

अब रामलाल ने नर्म होकर कहा—"क्यों घबरा रहे हैं? सब माल लाइये, तो मैं देख-दाखकर ठीक-ठीक दाम दे दूँगा।" फिर ज़रा धीमे स्वर से कहा—"मेरे बारे में भी आप लोगों को ख्याल करना चाहिये! पकड़े जाने पर जेल में सड़ना पड़ेगा।"

चन्दर और गुरदास और कुछ भी न कह कर वहाँ से चल दिये।

सड़क के चौराहे पर डाली लिये एक आदमी चिल्ला रहा था—"जुही की माला! जु...ही!"

फूलवाले के पास दो आदमी खड़े-खड़े गप्पें हाँक रहे थे—वे खुफिया पुलिस के आदमी थे।

चन्दर और गुरदास को देख कर फूलवाला एक माला हाथ में उठा कर बोला—"जनाब, एक माला तो लीजिये!"

चन्दर हाथ हिला कर इंकार कर, गुरदास के साथ चला गया। उन लोगों को पता ही नहीं था कि पागल, फ़क़ीर और फूलवाला तीनों एक ही आदमी थे।

× × ×

रामलोचन ने इन्सपेक्टर से मिलकर कहा—"अब मछलियाँ जाल में फँसी हैं! अब उन लोगों को गिरफ़्तार करना चाहिये।"

इन्सपेक्टर ने चकित होकर कहा—"क्या कह रहे हो! उन लोगों का पता मिला?"

"डाकुओं का सरदार और जो सेठ बन कर दूकान में आया था—उनको तो मैंने देखा है। सरदार का घर भी जानता हूँ। वे कहाँ इकट्ठे होकर सलाह करते हैं, यह भी मुझे मालूम है। रामलाल सर्राफ उन लोगों का डकैती का माल लेता है। आप

चाहें तो मय माल के उन लोगों को पकड़ सकते हैं। मुझे हाज़िर रहना चाहिये, या न रहने पर भी काम चल जायगा ?"

"तुम्हारे जाने की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि तुम इस मामले में हो यह पता लगने पर डाकुओं का कोई न कोई आदमी तुम्हें मार डालेगा। तब फिर तुमसे हम लोगों को सहायता नहीं मिलेगी। मुझे सब पता बता दो: मैं सब ठीक कर लूँगा।"

चन्दर कहाँ रहता है, किस मकान में वे लोग आकर जमा होते हैं—यह सब रामलोचन ने बता दिया। जेब से वह रूमाल निकाल कर इन्सपेक्टर के हाथ में दिया। उसने कहा—"यह उनके दल के किसी आदमी को दिखाने पर वह सब रहस्य प्रकट कर दे सकता है। आज शाम को रामलाल सर्राफ़ की दूकान, सरदार का मकान और वे लोग जहाँ जमा होते हैं—ये तीनों जगह घेर लेनी चाहिये। सरदार के मकान में एक औरत रहती है। वह दल के विषय में जानती है—मगर और कुछ नहीं जानती। मैं उसे निशान लगाये हुए तीस रुपये दे आया हूँ—उसके पास मिल सकते हैं।"

इन्सपेक्टर ने विस्मय प्रकट कर कहा—"उसे तुमने रुपया कैसे दिया ?"

रामलोचन ने मुस्करा कर कहा—"फ़क़ीर के भेस में।"

× × ×

शाम को चन्दर और गुरदास, रामलाल सर्राफ़ की दूकान में गये। डकैती का माल दोनों एक-एक गठरी में बाँध कर ले गये थे। दल में यह तय किया गया था कि शाम को सब जाकर उस पुराने मकान में इकट्ठे होंगे: चन्दर और गुरदास लौटकर, जो रुपया मिलेगा—बँटवारा कर देंगे।

फ़ायदा ही होगा। तुम उन लोगों के साथ क्यों खतरे में पड़ रहे हो ?"

गुरदास का चेहरा पीला पड़ गया। उसने हाथ जोड़ कर कहा—"हुजूर, मेरा कोई क़सूर नहीं है। उन लोगों ने मुझे इसमें फाँस लिया है। मैंने कुछ भी नहीं किया है।"

"मेरा भी यही ख्याल है।" कह कर इन्सपेक्टर ने वह रूमाल दिखाया। रूमाल का निशान दिखाकर वे बोले—"यह रूमाल तुम्हारा है या उन लोगों का ?"

गुरदास के चेहरे पर पसीना बह चला। उसने कहा—"उन्हीं लोगों में से किसी का होगा; जबरदस्ती मेरी जेब में डाल दिया था।"

इन्सपेक्टर ने उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिला कर कहा—"ठीक है। तुम्हारा कोई क़सूर नहीं है—उन लोगों ने तुम्हें फाँसा है। अगर जो कुछ जानते हो, सब सच-सच कह दो, तो तुम्हें रिहाई मिलेगी।"

गुरदास ने कहा—"मैं सब सच कहूंगा। साहब, मैं आपके पैरों पड़ता हूँ—मुझे रिहाई दिला दीजिये।"

इन्सपेक्टर ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—"तुम्हें कोई डर नहीं है—तुम सब बातें मुझसे कह दो।"

गुरदास ने सब कह दिया।

इन्सपेक्टर के हुक्म से रात को उसे बढ़िया भोजन मिला।

अदालत में फैसले के समय गुरदास सरकारी गवाह बना। रसलोचन को किसीने अदालत में नहीं देखा।

पापी

"डाक्टर साहब, क्या नहीं बचेगी ?"

मेरे निकट कुछ भी उत्तर देने को नहीं था। मैंने अपनी शक्ति भर इलाज किया था; पर मनुष्य ईश्वर नहीं है। सिर झुकाकर बाहर आ खड़ा हुआ।

यह एक भारतीय मुसलमान था। ग़रीब, असहाय युवक-पति मेरे पीछे-पीछे बाहर आया। उसे बहुत कातर देखकर कहा—"मैंने भरसक कोशिश की है। अब सिर्फ़ ख़ुदा के हाथ में है, भाई !"

युवक की आँखों से आँसू टपकने लगे। वह पत्नी के साथ जीवन-युद्ध में कूद पड़ा था—मलय टापू के पिनांग नगर में आकर वह कुली का काम करता था। कुछ पढ़ा-लिखा था, पर उसकी वह सामान्य विद्या रोटी कमाने में सहायता नहीं दे सकी। इसीलिए वह परदेस में अपना परिचय छिपाकर मेहनत-धंधा करके बड़ी कठिनता से गुजर कर रहा था।

भाग्यचक्र से मुझे भी पिनांग में आश्रय लेना पड़ा था—धन कमाने के उद्देश्य से नहीं, कुछ और कारण से। लखनऊ मेडिकल कालेज से एम० बी० बी० एस० की परीक्षा पास करके अपने छोटे से शहर में डाक्टरी करनी शुरू कर दी थी। धन कमाने का उद्देश्य नहीं था। पिता काफ़ी जमींदारी और बैंक में रुपये छोड़ गये थे। मेरे जीवन का ध्येय था भारतीय ग़रीब रोगी जनता की सेवा करना।

उसके हाथ में चार पाँच-पाँच चीनी डॉलर के नोट ठूँस कर मैं तेज क़दमों से चला आया। उसकी ओर देखने तक का मुझे साहस नहीं हुआ।

मुझे जीवन भर प्रायश्चित्त करना है। हा परमात्मा! हा परमात्मा !

× × ×

नीले समुद्र की छाती चीरता हुआ जहाज बढ़ रहा था। तरंगों से लड़कर यह यात्रा दस दिन के बाद समाप्त होगी। अनन्त और विशाल—पहाड़ की-सी तरंगें एक-दूसरे के कानों में जाने क्या कहकर अपनी ही छाती पर आघात पर आघात कर रही थीं! उन तरंगों के अथाह हृदय आलोड़ित करके कौन-सी वाणी, कौन-सी विशेषता नीले समुद्र के तल में प्रतिक्षण प्रतिध्वनित हो उठ रही है ?

मैं ध्यान से सुनने की चेष्टा कर रहा हूँ। लग रहा है कि मानो प्रति तरंग में गम्भीर स्वर से एक धिक्कार-ध्वनि हो रही है—"कायर! स्वार्थी!"

सचमुच ही मैं कायर हूँ, घोर स्वार्थी हूँ, हृदयहीन पशु हूँ, मेरे पाप का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। मूढ़ता, उच्छृंखलता और असंयम ने मेरे पौरुष का नाश कर दिया था। जीवन-भर की तपस्या क्या इस प्रकार मोह के चरणों में बिखेर देना ठीक हुआ ?

पूर्ण यौवन में, मेरी अट्ठारह वर्ष की उम्र में यह कैसे घोर अभिशाप की ज्वाला आ पड़ी ?

पर कोई उपाय नहीं है—कोई भी उपाय नहीं है! मूर्खता और मोह की सज़ा से भला छुटकारा मिल सकता है ?

डेक या केबिन—मुझे कहीं भी चैन नहीं है। अतीत निर्दयता से मेरे मानस चक्षु के सामने उज्ज्वल दृश्यों को सिनेमा-चित्र की भाँति खिला दे रहा था। क्षण भर के लिये भी इसका विराम नहीं था।

दिन के बाद रात्रि, रात्रि के बाद दिन—इसी प्रकार दस दिन बीत गये। कलकत्ते के बन्दरगाह पर जहाज़ आ पहुँचा। यन्त्र चालित-सा जहाज़ से उतरकर हवड़ा स्टेशन की ओर गया। घर—वह छोटा शहर—मेरी जन्म-भूमि बाहें फैलाकर मुझे आकर्षित कर रही है!

दूसरे दिन संध्या के समय अपने शहर के स्टेशन पर उतरा। स्टेशन से घर दो मील हैं। एक ताँगे पर सामान रखवा दिया।

चिर-परिचित सड़क पर से ताँगा बढ़ने लगा। पूर्णिमा के चन्द्रमा ने पृथ्वी को दिन-सा प्रकाशित कर दिया था। हवा चमेली की गन्ध से मतवाली थी।

दूर से मेरा घर दीखा। तीन पुरखों का पुराना विशाल भवन नींद से झूमता-सा खड़ा था। केवल बाहर दफ्तर में रोशनी जल रही थी। क्या मुनीम-कारिन्दे काम कर रहे हैं? पर आजकल के दिनों में यह आश्चर्यजनक है कि मालिक के परदेस में रहने पर भी नौकर रात तक अपने काम में अड़े रहें।

मुनीमजी मुझे देखकर चकित से कुछ क्षणों तक खड़े रहे। वे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे। इस बूढ़े को हमारे परिवार में काम करते चालीस वर्ष हो गये थे।

फिर तेज़ी से आगे बढ़कर उन्होंने कहा—"आये हो, भैय्या!" मैं उनको 'मुनीम चाचा' कहता था। उनकी ईमानदारी

और बुद्धि से पिता की मृत्यु के बाद हमारी सम्पत्ति और बढ़ गई थी। सब कारिन्दे मेरे सामने आ खड़े हुये।

मुनीम चाचा के साथ मैं मकान के अन्दर गया। उन्होंने मेरा शयन-कक्ष खोल दिया। देखा उनकी निगरानी में सारा मकान साफ़-सुथरा है, मानो मैं आज ही घर छोड़कर कहीं गया था। मुनीम चाचा की स्वामि-भक्ति पर मेरा हृदय गद्गद हो उठा।

भोजन के बाद मैंने संक्षेप में कहा—"चाचा, मैं जरा एकांत में रहना चाहता हूँ।"

"जैसी इच्छा हो, भैय्या!" कहकर मुनीम चाचा बाहर चले गये।

× × ×

नहीं है?—तो वे कहां गईं?

मेरे पिताजी चले जाने के बाद ही मां और बेटी जाने कहां चली गई हैं, किसी को भी नहीं मालूम है। मुनीम चाचा ने बहुत खोज की थी, पर पता नहीं चला था।

मेरे चले जाने के एक सप्ताह के बाद मुनीमजी को पता लगा कि वे गहरी रात में चली गई हैं—अपने हाथ कोई भी चीज़ नहीं ले गईं, एक धोती भी नहीं। यह सच है कि लोगों ने अनेक प्रकार की बातें फैलाई हैं, लेकिन सच्ची बात किसीको भी मालूम नहीं है।

वे आखिर कहां गईं? उनके पास तो धन नहीं था! वे कहां [illegible] इस [illegible] अरसे तक हैं? कैसे उनकी गुज़र हो रही है?

[illegible] आपकी ससुराल नहीं गई थीं! वहां उनका तो [illegible] मेरे आने के कुछ समय बाद ही गिर पड़ा

मेरी माता के अनुरोध से ही वे अपनी कन्या के साथ हमारे घर में आकर रहने लगी थीं। दुनिया में उनका कोई भी नहीं था।

गायत्री मौसी और मेरी माता बचपन में सखी थीं—दोनों में बड़ी मित्रता थी। उनका ब्याह भी पास के एक कस्बे में एक ग़रीब के साथ हुआ था। मेरे पिता भी गायत्री मौसी को बहिन की तरह स्नेह करते थे। विधवा होने के बाद कभी-कभी अपने बूढ़े पिता के निकट—जो हमारे घर के पास ही रहते थे—आकर वे रहती थीं। उनकी कन्या, माधुरी, दिन भर मेरी माता के पास रहती थी। माधुरी के साँवले चेहरे पर एक ऐसी सुन्दरता थी कि सभी उससे स्नेह करते थे।

इंट्रेन्स की परीक्षा देकर बनारस जाने के पहले तक माधुरी प्रतिदिन मेरे निकट पढ़ने के लिये आती थी। वह उम्र में मुझसे छः वर्ष छोटी थी, इसलिये वह मुझे 'मनोहर भैय्या' कहती थी। अब यह बात छिपाने की ज़रूरत नहीं है: उससे मेरा जो स्नेह हो गया था, वह मेरे यौवन के आने पर इतना गहरा हो गया कि लगता था कि उसे न पाने पर मेरा जीवन व्यर्थ हो जायगा। उस समय उसकी उम्र सोलह वर्ष की थी। मैं उस समय लखनऊ मेडिकल कालेज में दूसरे वर्ष का विद्यार्थी था। लेकिन वह बात प्रकट करने की तरह सरलता और साहस मेरे चित्त में नहीं था। क्योंकि मैं जानता था कि गायत्री मौसी पर मेरी माता का चाहे जितना स्नेह रहे, इस ग़रीब विधवा की लड़की से कभी भी मेरी शादी नहीं करेंगी—वे बहुत बड़े घराने की तथा सुन्दर कन्या की खोज कर रही थी। उस समय पिता की मृत्यु हो गई थी। मैं माता से प्रेम करता था, और उनसे बहुत डरता भी था। इस कारण बातचीत के सिलसिले में माता को जता देता कि अभी मुझे विवाह करने की इच्छा नहीं।

माता ने मुझसे वायदा भी किया था कि मेरे डाक्टरी पास न होने तक मेरी शादी नहीं करेंगी। ब्राह्मण के घर में अधिक उम्र तक कन्या कुमारी नहीं रह सकती। लोग कहा-सुनी करने लग गये। गायत्री मौसी ने मेरी माता की सहायता से माधुरी की शादी कर दी। दूल्हा चालीस वर्ष उम्र का एक विधुर था, रेलवे में क्लर्क था। यह खबर मुझे लखनऊ में मिली थी।

मेरे हृदय में कैसी गहरी चोट लगी थी, यह मैं भाषा में प्रकट नहीं कर सकता। उसी दिन मैंने प्रतिज्ञा की कि इस जीवन में कभी शादी नहीं करूँगा। जीवन में प्रेम केवल एक ही बार हो सकता है। मैं जानता था कि इस घटना से माधुरी का और मेरा दोनों का जीवन सदा के लिये अँधेरा हो गया। यह ठीक है कि उसने कभी भी अपनी लज्जा का त्याग कर अपने हृदय की बातों को आभास में भी प्रकट नहीं किया था; लेकिन फिर भी—फिर भी मैं उसके अन्तर को, उसके हृदय के गुप्ततम भाग को दर्पण की तरह साफ देख पाया था।

हम दोनों का मिलन संभव नहीं है, जानकर हम लोग एक दूसरे से दूर रहने लगे। बचपन और किशोरावस्था की मधुर स्मृति ही हम दोनों को एक दूसरे से आकर्षित रखने में सहायक हुई थी। किन्तु, हाय, विवाह के छः मास पश्चात ही माधुरी के पति की अचानक मृत्यु हो गई। सत्रह वर्ष की माधुरी विधवा हो गई!

यथा समय डाक्टरी पास करके घर लौट आया। माता मेरी शादी कर देने के लिये तैयारी करने लगीं: मेरठ में उन्हें एक लड़की पसन्द आ गई थी। पर मैंने उनसे दृढ़ता से कह दिया कि मैं जीवन भर कुँवारा रहूँगा—यदि माता ज़िद करें तो घर छोड़कर चला जाऊँगा।

मेरे हृदय में कहां घाव हो गया था, माता को मालूम था या नहीं, यह मैं नहीं जानता। पर मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा का आभास पाकर उन्होंने शादी का प्रसंग त्याग दिया।

निस्तब्ध रजनी में, अपने शयन-कक्ष में अतीत की तस्वीरें मानो सजीव होकर मेरी आंखों के सामने उज्ज्वल हो उठने लगीं। खुली खिड़की से चाँदनी-खिली प्रकृति की रहस्यपूर्ण रूप ज्योतिः मेरे अन्तर को धिक्कारती रही। आकाश के अनगिनती तारे मानो काना-फूसी करके मेरी ओर व्यंगभरी दृष्टि से देख रहे थे।

मुझे याद पड़ा—माता की बीमारी जब बहुत बढ़ गई, तब सबके मना करने पर भी इन्होंने गायत्री मौसी को बुला भेजा। उन्हें विश्वास था कि मौसी की स्नेह-दृष्टि के नीचे कोई तकलीफ़ नहीं हो सकेगी—उनकी मृत्यु हो जाने पर, मेरे सुख-दुख की देखभाल करने के लिये कोई तो रहेगा। माता ने मेरे एतराज पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। मृत्यु समय में भी बच्चे के लिये मां को कैसी व्याकुला रहती है!

मौसी माधुरी को साथ लिये आईं। माता के चेहरे पर एक सन्तोष की चमक खिल उठी। निश्चिन्तता से मेरी गृहस्थी-मरुभूमि का एकमात्र स्नेह-छाया से शीतल धारा सूखकर विलीन हो गया।

मौसी का स्नेह और यत्न कभी भी भूल नहीं सकता। माधुरी भी संयत भाषा और गम्भीरता के आश्रय में अपनी रक्षा करके मेरी सेवा और यत्न की देखभाल करने लगीं। शायद, मेरा जीवन इसी तरह बीत जाता ..

किन्तु मनुष्य के यौवन का विश्वास नहीं है! उच्छृंखल मनोवृत्ति को अपने कब्जे में रखना आसान बात नहीं है: चेष्टा

करने पर भी कभी-कभी सामयिक उत्तेजना में मनुष्य प्रकृति का गुलाम बन जाता है। माधुरी की खिली हुई यौवन के उच्छ्वास से पूर्ण आकर्षक देह मानो मेरा उपहास करती रहती थी।

जब चित्त से लड़कर अन्त में थक गया, तब माधुरी से शादी करने की बात सोच ली। ब्राह्मण कुल में विधवा-विवाह! समाज को यह कभी भी स्वीकार नहीं होगा। न हो। मैं घर छोड़कर किसी बड़े शहर में जाकर रहूँगा। पर जिसे सारे तन-मन से प्रेम करता आ रहा हूँ, मुझे उसकी जरूरत है समाज में स्वीकृति न पाने पर भी मैं उसे त्याग नहीं सकता।

अन्त में माधुरी भी मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं कर सकी।

पर संकल्प को कार्य में परिणत करने में नाना प्रकार की बाधायें आ पड़ने लगीं।

हम एक दूसरे को चाहते हैं—विवाह का बंधन हम दोनों को पवित्र रिश्ते में बाँध देगा, और बस हमारे चित्त आनन्द-नदी में तैरने लग गये।

यही कमरा था, ऐसी ही चाँदनी-खिली रात्रि थी। अध-यौवन ने प्रबल मोह और प्रलोभन के माया-जाल में फँसकर आत्म-हत्या कर ली।

पर सत्य सूर्य की भाँति सदा स्वप्रकाश है। एक दिन उसकी निर्दय रोशनी और ताप की ज्वाला सर्वाङ्ग पर फैल गई।

मैं घबरा गया। अब क्या हो? अब इज्जत कैसे बचे? अब हजारों जुबान और बातें लगेंगी! नहीं यह असह्य है।

मैं बड़ा कायर हूँ—शायद कायरता मेरे हाड़-मांस में कूट-कूट कर भरी हुई है। मैं और कुछ भी न सोचकर कई हजार रुपये साथ लेकर दूर भाग गया।

जिसने बड़े विश्वास से मुझे आश्रय मानकर अपना सर्वस्व दे दिया था उसका क्या हुआ, यह देखने के लिये भी मेरा साहस नहीं था।

कमरे की हवा आज मानो भारी हो उठी थी। बाहर की प्रकृति मानो मेरे पौरुष को धिक्कारती हुई कह रही थी—'अधम निर्दय मनुष्य ! कायर—स्वार्थी !'

यह ग़लत नहीं है ! यह ग़लत नहीं है ! सारे मनुष्य समाज के निकट मैं कठोर सज़ा के पूर्ण योग्य हूँ।

मैं अधीरता से कमरे में चहल-क़दमी करने लगा।

× × ×

उसे कहाँ पा सकता हूँ ? वह जीवित है या नहीं, यह किसे पता है ?

एकाएक माँ और बेटी कहाँ ग़ायब हो गईं ?

परमात्मा ! तुम्हारा पवित्र नाम पुकारने का मैं अधिकारी नहीं हूँ, यह मैं जानता हूँ। फिर भी, फिर भी हे प्रभु, मुझे रास्ता बता दो, मुझे प्रायश्चित्त करने का मौक़ा दो !

अनेक स्थानों में घूमकर एक सप्ताह से मथुरा में आया हूँ। मुझे शान्ति नहीं है, मुझमें क्लान्ति नहीं है। मैं लगातार घूमता फिर रहा हूँ जिससे कहीं उसकी खोज पा जाऊँ—उसे देख पाऊँ।

कोई इस प्रकार निश्चिन्त भाव से अपने को लोकारण्य में निर्वासित कर सकता है ? खोज करने पर जो कुछ मालूम हो सका था, उससे समझा कि माधुरी और उसकी माता ने किसी से भी कुछ प्रकट नहीं किया था। लोगों की दृष्टि से जो हालत छिपाना कठिन था, वह प्रकट होने के पहले ही माता और पुत्री निन्दा से बचने के लिये इस तरह ग़ायब हो गई थीं। मेरे

अदृश्य होने के साथ ही साथ उनके चले जाने के कारण ने, यह सच है कि समालोचना की सृष्टि की थी, पर असली बात का कोई भी अनुमान नहीं कर सका था ।

मैं समझ गया—माधुरी मुझसे सारे तन-मन से प्रेम करती थी, इस कारण मेरे कलंक को छिपाने के लिये उसे इस प्रकार गायब होना पड़ा । मेरे असंयम ने उसके नारी-जीवन का नाश कर दिया था—उसके भविष्य-जीवन को केवल अँधेरे में ढँक ही नहीं दिया, भारी कलंक से मलीन कर दिया, फिर भी वह चिर स्नेहशील नारी कोई भी शिकायत न जताकर चुपचाप मेरे रास्ते से अपने को हटा ले गई । नहीं तो माधुरी कभी भी अपने को इस तरह छिपा कर नहीं रखती ।

मेरी देह में जब तक शक्ति रहेगी, जब तक मेरे पैर चलने-फिरने की क्षमता रक्खेंगे, मैं तब तक उसकी खोज करता रहूँगा। वह यदि जीवित है, तो मुझे खोज निकालना ही है । मैंने एक साल बरबाद कर दिया है । निर्दय स्वार्थी की तरह, अपनी ही बातें सोचकर मैंने सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य की अवहेलना की है । क्या परमात्मा महापापी को प्रायश्चित्त का मौका भी नहीं देंगे ?

भगवान कृष्ण का आश्रय लिया है । वे करुणामय हैं ।

सैकड़ों पूजार्थी उनकी पूजा करके, उनका गुण गाकर तृप्त हो रहे हैं । हे दयामय, कृपा करके इस अभागे की पूजा स्वीकार करो, इस अभागे को क्षमा करो, इस दुःखी अभागे के मन में शान्ति दो !

लेकिन मेरा यह असंयम, एक निर्भरशील और आश्रिता युवती का इस प्रकार नाश कर देने का महापाप क्या क्षमा के योग्य है ? भगवान कृष्ण की सब पर एक-सी दया है, एक-सी

कृपा है—वे पापों की एक-सी सजा देते हैं। क्या उनसे क्षमा माँगने पर मेरे अपराध का अन्त हो जायगा ?

मैं नहीं समझा था—पहले धारणा भी नहीं कर सका था, इसीलिये क्षणिक भोग-सुख के माया-मोह में फँसकर पथभ्रष्ट हो गया था। पर उसके लिये लांछन, पीड़ा और घोर अशान्ति कौन भोग रहा है ? मैं तो लोगों के बीच सिर ऊँचा करके चल-फिर रहा हूँ। पर जिसने मुझ पर विश्वास करके निर्भयता से, पूर्ण निर्भरता के साथ मेरे प्रलोभन की आग में ईंधन-स्वरूप आत्म-समर्पण किया था, क्या मैंने उसे आश्रय देकर, सम्मान देकर, अपना कर्त्तव्य-पालन किया है ?

नहीं, नहीं—मेरे इस महापाप का प्रायश्चित्त नहीं है। नरक की जलन मेरी प्राप्य है।

दिन भर और रात भर वृन्दावन के मन्दिरों में मैं घूमता-फिरता रहा। चित्त में जो तीव्र आग जल रही है, वह मुझे जलाकर खाक कर दे !

दिन भर भूख और प्यास ने मुझे त्याग दिया था। दिमाग में नरक की आग जल रही थी, हृदय में अशान्ति का तूफान मचा हुआ था। गोपालजी के मन्दिर में आया। उस समय आरती हो रही थी। सैकड़ों कण्ठों से वन्दना-गीत निकलकर मन्दिर में एक पवित्र और स्वर्गीय वातावरण फैल गया था। उस अपूर्व वन्दना-गीत से मेरा सारा चित्त मानो भर गया।

सैकड़ों भक्तों का गुण-गान महापापी के हृदय को भी पवित्र कर देता है। आशा की वाणी मूर्त्त होकर सुननेवालों को आनन्द-विह्वल कर देती है। मेरी आँखों से आँसू झरने लगे।

हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! करुणामय !

बाहर आया। कहाँ जा रहा हूँ ?

सहसा मेरी पीठ पर किसीने हाथ रक्खा।

घूमकर देखा, बनारस विश्वविद्यालय में 'इंटर' का सहपाठी रमाकान्त है।

उसने कहा—"मनोहर, तुम यहां ?"

मैंने मुस्कराने की चेष्टा करके संक्षेप में कहा—"मथुरा-वृन्दावन में सभी को आना पड़ता है।"

रमाकान्त ने कहा, "सुना था कि डाक्टरी पास करके अपने शहर—नजीबाबाद में 'प्रेक्टिस' कर रहे हो। सरकारी नौकरी क्यों नहीं ली ? डाक्टरी कैसी चल रही है ?"

जवाब देना ही है। मैंने कहा—"हां, अच्छी चल रही है। तुम यहां क्या करते हो ?"

रमाकान्त ने प्रसन्नता से मुस्कराकर कहा—"स्कूल में शिक्षक हूं। हम लोगों की कांक्षा इससे अधिक नहीं। यह सस्ती है। तुम कहां ठहरे हो ?"

"मथुरा होटल में," कहकर मैंने चलने को कदम बढ़ाया।

कुछ पसोपेश के साथ रमाकान्त ने कहा—"तुम तो डाक्टर हो। तुमने ऊंची डाक्टरी शिक्षा पाई है। एक गरीब स्त्री को मुआयना करने का तुम्हें समय मिल सकता है ? वे बहुत ही गरीब हैं, मैंने अपने साध्यानुसार उनकी सेवा की है। वह बेचारी युवती शायद नहीं बचेगी, अन्तिम हालत में है। फिर भी अगर..."

मैंने बात काटकर कहा—"डाक्टरी करके पैसा कमाना मेरा ध्येय नहीं है। चलो, मैं अभी चलने को तैयार हूं।"

रमाकान्त चिल्लाया—"ए, तांगेवाले ! मथुरा चलोगे ? ठहरो !"

हम लोगों ने एक सँकरी गली के आरंभ में ताँगा छोड़ दिया; फिर उस अँधेरी गली में कुछ दूर तक पैदल चलकर एक छोटे-से मकान के सामने आ खड़े हुये। रमाकान्त ने कहा—"मैं भी ग़रीब हूँ, इससे अच्छी जगह में, मैं रह नहीं सकता। घर के एक कमरे में उनको रहने के लिये जगह दी है। इस जगत में उनका कोई भी नहीं है।"

चिरन्तन दुःख दुनिया के करोड़ों स्त्री-पुरुषों को प्रतिदिन चूर-चूर कर रहा है। यही दुनिया का असली इतिहास है।

घोर अँधेरा था। रमाकान्त मेरा हाथ पकड़कर भीतर ले गया और एक कोठरी दिखाकर बोला—"इसी में रहती है।"

कोठरी में एक दिया जल रहा था। कोठरी का अँधेरा इस हल्की रोशनी से और भी भयानक लग रहा था। एक मलीन शैय्या पर कोई लेटा हुआ था। उसके सिरहाने एक स्त्री-मूर्त्ति छाया की भाँति बैठी थी।

रमाकान्त ने कहा—"ज़रा ठहरो। मैं एक लालटेन ले आ रहा हूँ।"

वह शीघ्रता से चला गया।

मैं चुपचाप कोठरी के द्वार पर खड़ा रहा।

थोड़ी ही देर में रमाकान्त एक लालटेन हाथ में लिये आया। उसके इशारे से कमरे में प्रवेश किया। लालटेन के तेज़ प्रकाश से कोठरी खिल उठी।

शैय्या पर बैठी बुढ़िया ने हम लोगों को देखकर कहा—"भैय्या, देखो लड़की कैसी बेचैन हो रही है!"

उस स्वर से मैं चौंक उठा। मेरी सारी देह कांपने लगी।

मैंने यह किसका स्वर सुना? गायत्री मौसी का चिरपरिचित स्वर मैं हज़ारों में से पहिचान ले सकता हूँ!

उसकी अस्वाभाविक चमकवाली आँखों की पुतली में वह क्या जल उठा ? विस्मय, आनन्द, या संतोष की लपट ?

मैंने चिल्लाकर पुकारा—"माधुरी ! रानी !"

सहसा एक ज़ोर की खांसी के दौरे से रोगिणी की सारी देह सिकुड़कर क्षिप्र हो उठी। दो बार ताज़ा ख़ून मुँह से निकल कर गालों से बह गया। उसके बगल में एक छः मास का बच्चा सो रहा था। माधुरी का बायाँ हाथ काँपता हुआ ऊपर को उठकर निद्रित बच्चे की छाती पर गिरा और उसका दाहिना हाथ मेरे पैरों की ओर लुढ़क गया। बड़ी कोशिश से मेरी ओर देखने के साथ ही साथ उसकी पुतलियाँ ऊपर को उठकर सहसा स्थिर हो गईं।

रमाकान्त के हाथ से दूध का भरा पीतल का गिलास ज़मीन पर गिरते ही बच्चा चौंककर रो उठा। शोकातुर वृद्धा का हाहाकार तेज़ छुरी के आघात की तरह मेरी छाती में चुभ गया।

मैंने गिरते-पड़ते शैय्या के किनारे से उठकर दृढ़ काँपते हाथों से रोते बच्चे को हृदय में चिपका लिया और आँसू से दबे स्वर से कहा—"मैं तुम्हारे इस अन्तिम दान को सिर पर लिये रहूँगा—इसके लिये मैं अपना जीवन दे दूँगा !"

फिर रमाकान्त की ओर देखकर कहा—"भाई, मेरी ओर क्या देख रहे हो ? इस पापी ने अपने हाथों से इस स्त्री का वध किया है ! पर इसका प्रायश्चित्त...ओफ़—परमात्मा...!"

पर इस बात से पत्नी की घबराहट रत्ती भर भी कम नहीं होती। वे गंभीर मुद्रा बनाकर चली जातीं। वे स्त्री हैं इसलिये वे कन्या के भविष्य के दुःखों को सोचकर चिन्तित हो जातीं। आख़िर शीला की शादी होगी और उसे दूसरे के घर रहना ही है। क्या वे लोग शीला की यह शौक़ीनी और 'मेम साहब' की-सी चाल-चलन सहन कर सकेंगे? अगर सहन न करें, और यह अधिक संभव है, तब शीला का सारा जीवन जाने कैसे बीतेगा—यह सब सोचकर उनका हृदय आशंका से काँप उठता। फिर उनसे और कुछ सोचा नहीं जाता; वे परमात्मा पर सब छोड़कर चुप रहतीं।

उस दिन रामसरनजी बैठक में बैठकर एक पुस्तक पढ़ रहे थे। शीला ने एकाएक तेज़ी से उस कमरे में प्रवेश करके उनके हाथ से पुस्तक छीनकर कहा—"बाबूजी, मैं सिनेमा जा रही हूँ—रमेश बाबू के साथ। 'पर्ल' में बंगाली लेखक शरच्चन्द्र का 'स्वामी' हो रहा है..." और वह तूफ़ान की भांति कमरे से बाहर चली गई।

रामसरनजी अदृश्य होती हुई कन्या की ओर देखकर ज़रा मुस्कराये। सारा कमरा शीला की देह की सुगंध से भर गया था। उसकी साड़ी के सौंदर्य और चमक से उस समय भी मानो कमरा जगमगा रहा था।

रात को शीला ने घर लौटकर रामसरनजी से कहा—"बाबूजी, जब 'स्वामी' उपन्यास को मैंने पढ़ा था तब मुझे अच्छा नहीं लगा था, आज 'चित्र' भी अच्छा नहीं लगा। शरच्चन्द्र ने स्त्रियों को बहुत हीन करके दिखाया है। क्या स्त्रियाँ इतनी हीन हैं कि उन्हें पति के निकट भी सिर झुकाये रहना

पड़ेगा ? और सो भी उनका पति अपना मनचाहा हो या न हो ? नहीं—मैं स्त्रियों की यह हीनता हरगिज़ सहन नहीं कर सकती—मैं कभी भी पुरुषों से नीची होकर, हीन होकर रह नहीं सकूँगी। मैं स्वयं कभी इस तरह अपनी हस्ती भूलकर सिर झुकाये रह नहीं सकूँगी।"

रामसरनजी कन्या के सिर पर हाथ फेरते रहे। वहाँ रमेश बैठा हुआ था, उसने कहा—"मेरी भी यही राय है। हम स्त्रियों को नारी कहते हैं, देवी कहते हैं, और बाद को पैरों से कुचलते हैं। मेरा चित्त यह देखकर तड़प उठता है। पति और पत्नी का अधिकार बराबर होना चाहिए। अधिकार बराबर नहीं है इसी-लिए न इतने वहम, झगड़े और मान-अभिमान होते रहते हैं—इतने दुखों की सृष्टि हुई है ? वास्तव में हमारा हिन्दू जगत सड़ा रहा है—बहुत पिछड़ा हुआ है !"

शीला ने प्रशंसा-भरी दृष्टि उठाकर रमेश की ओर देखा। रमेश आत्म-गर्व से ख़ुश हो उठा।

रमेश रामसरनजी का छात्र है। इस घर में उसका बेरुटक आना-जाना और मेल-मिलाप है। वह शीला से प्रेम करता है। और शीला भी उससे प्रेम करती है। रमेश शीला की प्रत्येक बात का समर्थन करता है। शीला जो कुछ कहती है वह कर देता है। शीला सोचती है—हाँ, पुरुष को ऐसा ही होना चाहिये। स्त्रियों के स्वतंत्र विचार को स्वतंत्र भाव से उपभोग करने दो। इस घर में रमेश की इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि उसके और शीला के कहीं जाने पर किसी के मन में कुछ भी संदेह नहीं होता था। सभी जानते थे कि रमेश से शीला का विवाह होगा। वे दोनों भी यही जानते थे—कम से कम शीला तो यही जानती थी।

आसमान में बड़ी-सी चाँदी की थाली की तरह चाँद मुस्करा रहा था। शरद्काल का प्रारंभ था। उस समय की वर्षा का जल पेड़ों के पत्तों से और जमीन के बदन से सम्पूर्ण भाव से नहीं सूखा था। बेला और जुही की गंध ने, प्रथम विवाहित लज्जा से भीत वधू की भाँति वायु में अपने को खो दिया था। उसकी धीमी गंध कमरे में तैरती आ रही थी।

शीला तस्वीर की तरह अपनी सजावट करके खिड़की के सामने एक कुरसी पर बैठी हुई थी। रमेश ने अधखिले गुलाब का एक गुच्छा हाथ में लिये उस कमरे में प्रवेश किया। शीला ने हलकी मुस्कराहट के साथ कहा—"कितने सुन्दर गुलाब हैं!"

. रमेश ने ख़ुशी के साथ शीला के हाथ में फूलों को देते हुये कहा—"शीला, मेरे निकट इन फूलों की क़ीमत तुम्हारी क़ीमत से बहुत कम है।"

कहकर वह शीला की कुरसी के हाथ पर बैठ गया। दोनों की देह में बिजली का प्रवाह चंचल हो उठा। शीला ने मुस्करा कर कहा—"पुरुष बड़े ख़ुशामदी होते हैं। वे इतनी बातें बना सकते हैं!"

रमेश ने शीला का एक हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—"नहीं शीला, यह मेरे हृदय की बात है। जब तुम्हारे प्रेम की क़ीमत लगाने की कोशिश करता हूँ, तब अपने निकट मैं बहुत हीन लगता हूँ। वास्तव में हम पुरुष इतने हीन हैं कि तुम लोगों को कोई क़ीमत ही नहीं दे पाते।"

शीला को रमेश की बातें बहुत अच्छी लगीं। वह नोर में डूब गई।

इस घटना के बाद शीला किसी प्रकार भी विवाह करना नहीं चाहती थी—इस कारण कि पुरुषों पर उसकी बड़ी घृणा हो गई। बाद को रामसरनजी ने शीला को बहुत समझा-बुझाकर इस शर्त्त पर विवाह करने को राजी किया कि वह जिससे विवाह करना चाहेगी उससे ही विवाह होगा। अनेक लड़केवाले आये, पर किसीको शीला ने पसन्द नहीं किया। पर अन्त में निर्मलकुमार को उसने पसन्द कर लिया।

निर्मलकुमार साहित्यिक है। उसे कुछ प्रसिद्धि मिली है। निर्मलकुमार की कहानियाँ मासिक पत्रों में पढ़ी हैं। कहानियाँ पढ़कर और 'निर्मलकुमार' नाम सुनकर जाने क्यों वह आकर्षित हो गई। निर्मलकुमार की कहानियों की विशेषता थी स्त्रियों के गुण और उच्चता का प्रचार करना। शीला ने सोचा, यह आदमी बुरा नहीं होगा। कम से कम वह चाहे उसका आदर न करे, अनादर नहीं करेगा। शीला निर्मलकुमार से शादी करने को राजी हो गई। पर फिर भी उसके चित्त से पुरुषों के प्रति पुराना विद्वेष कुछ भी कम नहीं हुआ।

जब निर्मलकुमार अपने मित्रों के साथ शीला को देखने के लिये आया, तब शीला सिर झुकाये गंभीर मुद्रा से बैठी रही, कुछ भी नहीं बोली। उस दिन उसने भरसक अपनी सजावट की थी। वह मानो अपने को प्रकट करना चाहती थी कि वह साधारण नहीं है—वह भी कुछ है। तुम लोग मेरी जाँच करने के लिये आये हो, मैं भी तुम लोगों की परीक्षा लेना जानती हूँ। तुम लोग मेरे निकट तुच्छ हो। उसके चित्त में ऐसी गहरी अवहेलना का भाव आ गया था कि उसने एक बार के लिये भी निर्मलकुमार को अच्छी तरह नहीं देखा।

आकर लेट गया था। क़रीब जबरन शीला कमरे में भेज दी गई। शीला ने कमरे का द्वार बन्द कर दिया और वह सब फूलों को दोनों हाथों से बटोर-बटोरकर तोड़-मरोड़कर जमीन पर फेंकने लगी। निर्मलकुमार ने धीमे स्वर से पूछा—"यह क्या कर रही हो ?"

शीला व्यंग-भरे स्वर से बोली—"हँः सुहागरात है ! सुहागरात ! सुहागरात नहीं होगी ! तुम्हारे पास लेटने में घृणा हो रही है। मुझे मालूम है कि सभी मनुष्य सुन्दर नहीं होते हैं; लेकिन साफ़-सुथरा रहना तो अपने हाथ में है। क्या यह भी सिखाने की जरूरत है ?"

निर्मलकुमार ने उत्तर में कुछ भी नहीं कहा। वह चुपचाप आँखें बन्द किये पड़ा रहा। उसकी यह नीरवता शीला को और भी अधिक चुभने लगी—अधिक आघात देने लगी। अन्त में बोली—"तुम्हें चाहे शर्म न आये, पर मैं शर्मिन्दा हो रही हूँ। हट जाओ, मेरे लेटने की जगह छोड़ो !"

यह उनका प्रथम मिलन रात्रि का प्रथम प्रेम-आलाप था।

शीला जिस प्रकार अपनी अच्छी से अच्छी सजावट करती, निर्मलकुमार उसी प्रकार मैला धोती-कुर्ता पहिने रहता और कभी नंगे पैर घूमता फिरता। मानो दोनों में प्रतियोगिता हो रही थी कि कौन किसको हरा सके। शीला क्रोधित होकर शोर मचाती रहती, निर्मलकुमार स्थिरता से सब सहन करता। इससे शीला और भी क्रोधित हो जाती।

एक दिन शीला ने साफ़ धोती, कुर्ता, टोपी और एक जोड़ी नई जूतियाँ उसे देकर कहा—"लो, मेरे साथ तुम्हें सिनेमा में चलना है !"

निर्मलकुमार कुछ भी न कहकर उन चीजों को टेबिल पर रखकर चला गया। शीला क्रोध से फलने लगी। कितना अपमान है! उसने कभी भी अपमान सहन नहीं किया था, अब भी वह न सहेगी—वह कुछ कड़ी बात जरूर कहेगी। पर क्या इस आदमी में जरा भी लज्जा है? कोई जवाब नहीं देता है—गूँगे-सा चुप रहता है। एक घर में [illegible] सकती है? शीला समझ ही नहीं पाती कि यह आदमी किस स्वभाव का है। निर्मलकुमार उससे [illegible] गई है; पर उसने इस पर ध्यान [illegible] को नींद टूट जाने पर शीला ने देखा है कि निर्मल बैठा पंखा से उसे हवा कर रहा है, [illegible] हाथ से उसके मुंह का पसीना पोंछ दे रहा है। निर्मलकुमार की गर्म सांस ने उसके चेहरे पर गिरकर हृदय में सनसनाहट ला दी है, पर वह निद्रित रहने के छल में पड़ी रही। उसने मन में [illegible] है कि उसने क्या गलत और अनोखा काम किया है? प्रेम का रिश्ता केवल लेने के लिये नहीं है—देने के लिये भी तो है। इस एक महीने में उसे निर्मलकुमार अच्छा नहीं लगा था, लेकिन बुरा सोचने में हिचकिचाहट भी होती थी। वह निर्मलकुमार को समझ नहीं सकती थी, इस कारण ना-समझ क्रोध से वह जल उठती थी। उसने अब तक किसी की भी अधीनता स्वीकार नहीं की थी, भला निर्मलकुमार कैसे उसे अधीन बना सकता है! नहीं, यह हरगिज नहीं हो सकता। पर निर्मलकुमार तो [illegible] नहीं है कि वह क्या चाहता है। शीला छटपटाती रही।

उस रात को निर्मलकुमार के [illegible] के आते ही शीला [illegible]—"[illegible] हो, मैं क्या करूं—[illegible] करते

तुमसे शादी की है। पुरुष ऐसे कृतघ्न होते हैं कि दान की क़ीमत नहीं समझते हैं! मैं जिससे प्रेम करती थी उसका नाम रमेश है—अगर मैं चाहती तो उससे शादी कर सकती थी। मैंने उससे इसीलिये शादी नहीं की कि बाप के नामंजूर कर देने पर उसने पसोपेश किया। मैं उससे सचमुच ही प्रेम करती थी, शादी के दिन भी मैं उसके लिये रोई हूँ। उसने प्रेम की क़ीमत नहीं समझी थी, इस कारण उसे दूर हटा दिया था। जानते हो, मैं तुमसे रत्तीभर भी प्रेम नहीं करती हूँ।"

निर्मलकुमार ने फ़ौरन कहा—"जानता हूँ।"

वह और कुछ भी न कह कर लेट गया। शीला इतनी बातें कह गई—इतना शोर मचाया, पर निर्मलकुमार के निकट मानो यह सब कुछ नहीं था। जैसे शीला ने कोई नई बात नहीं कही है और निर्मलकुमार ने कोई नई बात नहीं सुनी है। इन बातों को मानो वह बहुत अरसे से जानता है। निर्मलकुमार आँखें बन्द करके पड़ रहा—एकदम चुपचाप। शीला कुछ देर तक निर्मलकुमार की ओर जलती दृष्टि से देखती रही। क्या यह आदमी मनुष्य है या और कुछ? चोट करने पर भी, भला-बुरा कुछ बोलता ही नहीं है? वह आहिस्ते-आहिस्ते ज़मीन पर की दरी पर लेट गई।...सहसा उसकी नींद टूट गई। उसने देखा कि निर्मलकुमार बहुत स्नेह के साथ उसके सिर को उठा कर नीचे एक तकिया रख रहा है। नींद के आवेश में यह घटना उसे बुरी नहीं लगी। फिर वह सब भूल जाकर करवट लेकर चैन से लेटी रही। अनजाने उसका एक हाथ निर्मलकुमार की गोद में जा गिरा। और इसी भाव से शीला सो गई। निर्मलकुमार चुपचाप बैठा रहा।

इसी हालत में शीला की नींद टूटी, तब अपने इस लज्जा-जनक व्यवहार से स्वयं चौंक उठी। वह जिस आदमी की

का कोई भी रास्ता नहीं देख पाती। शायद इसीलिये वह बदल रही है।

निर्मलकुमार ने कहा—"इन सबके सिवाय तो मेरी और पोशाक़ नहीं है। तुम अगर लज्जित होती हो, तो मैं नहीं जाऊँगा। किसीके साथ इलाहाबाद भेज दूँगा।"

शीला शीघ्रता से बोली—"नहीं, नहीं, तुम्हें चलना पड़ेगा। अगर नहीं जाओगे तो मैं और भी लज्जित होऊँगी। सबसे कैफ़ियत नहीं दी जायगी मुझसे कि तुम क्यों नहीं आये। हाथ जोड़ती हूँ मुझे तंग न करो। तुम चाहे कुछ भी करते रहो, लेकिन क्या तुम्हारे निकट पत्नी की लज्जा और बेइज्जत की कोई क़ीमत नहीं है ?"

शीला ने शायद आज प्रथम अपनी ज़ुबान से निर्मलकुमार के सामने कहा कि वह निर्मलकुमार की पत्नी है। वह अपनी बात सुनकर चौंक उठी। क्यों इतना परिवर्तन हो रहा है !

पिता के घर आकर शीला पर और एक मुसीबत आ पड़ी। सब कहते हैं कि तुम ऐसी सज-धजकर रहती हो, पर तुम्हारे पति इस तरह ऐसे कपड़ों से क्यों रहते हैं ? उन्हें तुम 'अप टू डेट' नहीं बना सकीं ?

शीला इस बात का क्या उत्तर दे ? निर्मलकुमार पर और इन लोगों पर उसे क्रोध होता। तुम लोगों को इतनी माथा-पच्ची करने की आवश्यकता क्या है ? हाय उसकी तक़दीर में इतनी सारी परेशानी थी ! पुरुष अपनी इज्ज़त और बेइज्ज़ती पर इतने लापरवाह भी होते हैं ! जिन बातों को सुनकर वह लज्जा से सिर झुका जाती है, उन्हीं बातों को वह शख्स निर्विकार चित्त से सहन कर रहा है। शीला अपने नारी-अभिमान को जितनी ऊँचाई पर रखना चाहती है, मानो निर्मलकुमार

उसमें उतना ही आघात करना जा रहा है। क्रोध करके, विनती करके—किसी प्रकार भी इस आदमी को ठीक रास्ते पर नहीं लाप रही है।

शीला के मायके में आकर रहते ही रमेश ने फिर आना शुरू कर दिया है। पहले शीला ने घृणा से अच्छी तरह बात ही नहीं की। फिर उसे लगा कि निर्मलकुमार को आघात करने के लिये यही एक रास्ता है। वह यह जानती थी कि पुरुष सब सहन कर सकता है, लेकिन प्रेम का अपमान सहन नहीं कर सकता। शीला ने यह हथियार ले लिया। वह निर्मलकुमार को दिखा-दिखाकर रमेश से हँसी-मजाक करती, यद्यपि वह मन ही मन रमेश से घृणा करती थी। शीला जितना ही निर्मलकुमार पर जय पाना चाहती, उतना ही निर्मलकुमार मानो उसे पराजित करता। शीला का जिद्दी चित्त यह किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकता, इसीलिये अपने मन में पति के हृदय में प्रेम की ईर्ष्या प्रज्वलित करने की हीनता मानकर भी उसे रमेश से मित्रता करनी पड़ी। फिर भी वह समझ नहीं पाती कि जब वह निर्मलकुमार को नहीं चाहती है तब फिर उस पर विजय पाने का आग्रह क्यों? इस क्यों का उत्तर वह चित्त में ढूँढ़ नहीं पाती। और इस कारण ही वह जलकर खाक होती रहती।

शीला फिर रमेश से पहले का-सा व्यवहार करने लगी। रमेश धन्य हो गया। शीला के व्यवहार से रमेश का साहस काफी बढ़ गया। पर शीला अपने चेहरे पर चाहे जितनी खुशी प्रकट करती रहे, उसके चित्त में जरा भर सन्तोष नहीं हुआ; क्योंकि निर्मलकुमार के भाव में कोई भी परिवर्तन लक्षित नहीं हुआ। वह भी जैसे उसके निकट कुछ नहीं है। अगर निर्मल

कुमार क्रोध प्रकट करता, तिरस्कार करता, तब शायद शीला के चित्त की हालत ऐसी नहीं होती। निर्मलकुमार की नीरव उपेक्षा ही उसे सबसे अधिक दुखी करने लगी।

उस दिन रमेश ने आकर शीला से कहा—"चलो शीला, जमुना किनारे हवा खा आयें।"

"चलो," कहकर ख़ुश शीला ने पढ़ते हुये निर्मलकुमार की ओर देखा। पर वह समझ नहीं सकी कि निर्मलकुमार ने उसकी बात सुनी है या नहीं।

शीला के घर से जमुना अधिक दूर नहीं थी। दोनों अगल-बगल बात करते हुये पैदल चले। रमेश कितनी ही बातें कहने लगा, लेकिन तब शीला के चित्त की हालत ऐसी थी कि सन्देह है कि वह सब सुन रही थी। वह केवल 'हूँ, हां' के द्वारा रमेश की बातों का उत्तर दे रही थी।

तब सूरज डूब रहा था। पश्चिम के आसमान पर ढेर-सा गुलाल बिखरा हुआ था और सूर्य की अन्तिम सुनहली किरणें तिरछे भाव से जमुना के शान्त, कहीं नीले कहीं काले जल पर गिरी थीं। उन्हीं किरणों का कुछ भाग शीला के मुख पर गिरा। शीला कितनी ही बार यहाँ टहलने आई है। यहाँ उसने कितने ही लोगों से बातें की हैं, हँसी-मज़ाक किया है, अपनी सुख-सम्पदा दिखाकर गर्व अनुभव किया है। लेकिन वह सहज तथा सरल भाव से टहल नहीं सकी। मानो सभी की कुतूहल भरी दृष्टि उसकी ही ओर जमी हुई है! उसने उन दृष्टियों को सहन करने की क्षमता आज मानो अपने अनजान से कहीं खो दी है। आज उसके हृदय में एक डर-सा, एक संकोच-सा उठने लगा—वह पहले की तरह सिर ऊँचा करके गर्व के साथ नहीं चल सकी। आज उसमें यह कैसा परिवर्त्तन आ

कितनी घृणा करती हूँ ! अगर फिर कभी मेरे सामने तुम आये तो वहुत वेइज्ज़त हो जाओगे—याद रखना !"

कहकर वह तेज़ क़दमों से घर की ओर बढ़ चली। रोदन से उसकी सारी देह फूल उठ रही थी। आँसुओं से भरी आँखों में अँधेरा और अधिक गहरा लग रहा था। किसी तरफ भी उसका ध्यान नहीं था। जाने कितनी बार उसने गिरते-गिरते अपने को सम्हाला।

जब वह घर पहुँची तब उसका चेहरा देखने पर वह पहले की शीला-सी नहीं लग रही थी। इतने थोड़े समय में उसकी देह और चित्त पर इतना परिवर्त्तन का तूफ़ान चल गया था।

उसने दौड़ कर उसी हालत में कमरे में प्रवेश किया। निर्मल कुमार उस समय भी अकेला एक आरामकुरसी पर बैठ कर पुस्तक पढ़ रहा था—वह निर्विकार और निश्चिन्त था। शीला कमरे में प्रवेश कर, उसके दोनों पैरों को हाथों से लपेट-कर घुटनों में मुँह छिपाकर उच्छ्वास के साथ रोती हुई बोली—"अजी, तुम कैसे मुझे दूर हटा कर चुप बैठे हो ! मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, क्या तुम्हें मेरी बेवकूफ़ी की सजा नहीं देनी चाहिये ? तुम मुझे क्षमा करो—मुझे इस तरह सजा न दो। तुम मेरी भूलों की सजा सहज भाव से दो।"

निर्मलकुमार ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा—"मैंने तो कभी भी तुम्हें सज़ा नहीं दी है, और न कभी देनी चाही है। शीला, मैं जानता था कि तुम किसी दिन अपनी भूल स्वयं समझ सकोगी, इसीलिये मैंने कुछ भी नहीं कहा है। शीला, जब मनुष्य सोचता है कि वह स्वयं अपनी भूल नहीं समझेगा, तब उसकी भूल सुधारने की कोशिश करना व्यर्थ प्रयास है।

तुमने तो कोई अपराध नहीं किया है, तो मैं क्षमा किस लिये करूँ ?"

शीला उसी भाँति रोती हुई बोली—"नहीं, नहीं, कहो कि तुमने मुझे क्षमा दी है। तुम नहीं जानते हो कि मैं कितनी पापिन हूँ। आज मैंने तुम्हारा अपमान किया है, अपना अपमान किया है..."

निर्मलकुमार ने उसकी बात काट कर कहा—"खैर, जो कुछ हो गया है, उसके लिये दुःख नहीं करना चाहिये, शीला—मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। मैं जानता हूँ कि तुम वास्तव में मेरी हो; तुम अपनी जगह से जरा भी नहीं हटी हो। मैं केवल यह चाहता था कि तुम स्वयं समझ सको कि बाहर के आवरण के द्वारा हृदय की जांच नहीं हो सकती है। आज अपनी यह भूल तुम्हारी समझ में आ गई है। आज तुमने अपनी जगह स्वयं ही दुरुस्त कर लिया है।"

कह कर निर्मलकुमार ने शीला को छाती के निकट खींच लिया। उसका मुँह शीला के रोदन से धुले हुये मुँह की ओर झुक गया।

शान्ति

रमेश दुःखी आँखों से सामने किशोरी के आँसुओं से मलिन चेहरे की ओर कुछ क्षण देख कर खिड़की पर से हट आया। किशोरी ने उसे नहीं देखा था। अँधेरी, निर्जन कोठरी में बैठी हुई वह उच्छ्वसित आँसुओं की धारा से अपनी व्यथा का बोझा हलका कर रही थी। इस समय बगल के मकान की खिड़की पर कोई रह सकता है, यह शायद उसने सोचा भी नहीं था। दो पहर रात्रि बीत चुकी थी। ये दोनों मकान स्तब्ध और अँधेरे थे। शय्या छोड़ कर रमेश एकाएक क्यों उठा था, यह वही जानता होगा। किशोरी के, वर्षा से भीगे फूल की तरह, आँसुओं से गीले मुख ने उसे काफी देर तक स्तब्ध रक्खा। हलकी चाँदनी भरी रात्रि थी। डूबते चाँद की एक किरण किशोरी के चेहरे पर—अस्त-व्यस्त बालों पर गिर रही थी। रमेश ने चुपचाप द्वार खोल कर बाहर आकर पुकारा—"अम्माँ! अम्माँ! क्या सो गईं?"

गायत्री जाग रही थीं। प्रतिदिन की तरह आज भी सिर-हाने के पास मोमबत्ती जला कर रामायण लेकर लेटी थी। पढ़ते-पढ़ते झपकी आ गई थी पुत्र के आह्वान से घबराई-सी कमरे के बाहर आई। उनके चेहरे पर शंका की छाया थी। पूछा—"क्यों रमेश, क्या बात है? अभी तक सोया नहीं—तबीअत ख़राब तो नहीं है?"

माता के व्याकुल मुख की ओर देख कर रमेश मुस्कराया। कहा—"तबीअत क्यों ख़राब होगी?"

गायत्री का हृदय हलका हो गया। बोलीं—"तब क्यों इतनी रात तक जाग रहा है?

इस बात का उत्तर न देकर रमेश ने कहा—"मेरे कमरे में आओ, अम्माँ! एक चीज देखो!"

कुतूहल से माता के कमरे में आते ही रमेश ने दूर से रोती हुई किशोरी को दिखा कर कहा—"यह शान्ति है न? वह इस तरह क्यों रो रही है?"

व्यथा से गायत्री का मुख मलिन हो गया। दुःखित स्वर से बोलीं—"क्यों रो रही है यह एक शब्द में कैसे कहूँ, रमेश! रोने के सिवाय बेचारी कर ही क्या सकती है?"

रमेश माता की बात समझ नहीं सका। शान्ति को वह बिलकुल नहीं जानता है, सो नहीं। वह उस घर की होने वाली बहू है। उसका पिता मृत्यु के समय निःसहाय पुत्री को मित्र रामनाथ के हाथों में सौंप कर पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार करने को कह गया था। रामनाथ भी मित्र का अनुरोध मान कर शान्ति को अपने घर लाया था। रमेश को इतना मालूम था। फिर वह डाक्टरी पढ़ने के लिये इंगलैंड चला गया। लम्बे प्रवास से वह आज ही घर लौटा था। शान्ति की ओर देख कर वह सहज ही प्रतीत होता था कि अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ। इसका कारण भी उसने सोच लिया कि शायद रामनाथ की आकस्मिक मृत्यु के लिये ही विवाह कुछ समय के लिये मुल्तवी है। माता की बात पर उसने कुछ विस्मय के साथ कहा—"तुम्हारी बात मैं नहीं समझा, अम्मा!"

गायत्री बोलीं—"अपनी चाची को तो जानते ही हो, बेटा! वह शान्ति को स्नेह की दृष्टि से देख नहीं सकतीं। इसलिये बेचारी की दुर्दशा का ठिकाना नहीं है। तुम्हारे चाचा

उसे अपने लड़के से व्याहने के लिये लाये थे, इसलिये उन्होंने भी कम दुःख नहीं भोगा, अन्त में मृत्यु ने उनको शान्ति दी,—पर शायद शान्ति के भाग्य में छुटकारा नहीं है। तुम्हारी चाची उसे मारती भी है। अहा, वेचारी को वहुत दुःख देती है!"

रमेश का चेहरा दुःखित हो उठा। उसने कहा—"और कैलाश भैया? वह उससे कैसा व्यवहार करता है?"

"माँ की तरह ही—कोई फ़र्क़ नहीं! उन लोगों से सलाह न करके एकदम शान्ति के वाप को स्वीकृति देने के लिये और उसे अपने घर लाने के लिये उसने वाप को क्षमा नहीं की। रोज झगड़ा होता था। इससे अगर...पर यह कैसे हो सकता है? वेचारी का कहीं कोई भी नहीं है। वह वड़ी अभागी है!"

माता की थोड़ी वातों से किशोरी के वर्त्तमान जीवन का इतिहास कुछ-कुछ रमेश की समझ में आया। आधी रात के समय निर्जन कमरे में बैठे-बैठे रोने का कारण भी अज्ञात नहीं रहा। रामनाथ रमेश के पिता का कनिष्ठ था। वचपन से चाची रामप्यारी और उनके इकलौते पुत्र कैलाश को अच्छी तरह जानने पर भी आज इस किशोरी के आँसुओं ने उसे एक और नया रूप दिखाया। व्यथित स्वर से रमेश ने कहा—"इसके लिये तुम चाची से कुछ कहती नहीं?"

"मैं कहूँ! रमेश, तुमने आज तक अपनी चाची को नहीं पहिचाना! तुम्हारे चाचा भले आदमी थे,—वे दोनों भाई ही एक से थे। दोनों में कितना प्रेम था! फिर भी हम लोग अलग क्यों हो गये? इसकी वजह तो तुम्हारी चाची ही है! रमेश, मैं उससे वहुत डरती हूँ। नहीं तो शान्ति की इतनी दुर्दशा देख कर भला मैं चुप रहती!"

"पर अम्माँ ! क्या तुम अन्याय को बढ़ावा नहीं दे रही हो ? चाहे बढ़ावा न हो, पर अन्याय देख कर डर से चुप रहना, तो अन्याय का समर्थन ही है। हाँ, चाची कुछ नाराज होतीं—दो कड़ी बातें कहतीं,—क्या यह तुम नहीं सह सकतीं ?"

"उसकी जबान कैसी बुरी है यह तुम नहीं जानते हो बेटा ! कुछ दिन सुन तो लो, फिर समझना कि क्यों तुम्हारी अम्माँ ऐसी चुप बैठी है। बेचारी को इतनी तकलीफें देती है, यह देख कर भी इसलिये चुप रहती हूँ कि निरुपाय हूँ।"

कुछ उत्तेजित स्वर से रमेश ने कहा—"तो मैं ही कैलाश भैय्या से कहूँगा !"

"तुम, जिसे अन्याय सोच रहे हो, वह शायद उसे अन्याय नहीं सोचता है। आदमी जो काम करता है वह अगर उस काम को अन्याय सोचे, तो क्या वह काम कर सकता है ? कैलाश शान्ति को बिलकुल ही पसन्द नहीं करता। अगर वह उसे चाहता, तो क्या तुम्हारी चाची उससे वैसा व्यवहार कर सकती ?"

"तुम क्यों नहीं उसे अपने पास लाकर रखतीं, अम्माँ ?"

"मैंने यह भी तो रामप्यारी से कई बार कहा था, पर राजी नहीं होती। उसे छोड़ने पर उसकी गृहस्थी का काम कौन करे ? शान्ति ही तो सब कुछ करती है।"

"क्या शान्ति का अपना कोई नहीं है ?"

"नहीं। होने पर भला कोई पराये घर अपनी पुत्री को छोड़ सकता है !"

रमेश ने और कुछ नहीं पूछा। गायत्री अपने ध्यान करती रहीं—"मैं सोचती रहती हूँ, रमेश, कि कैसे मनुष्य इतना निर्दय

होकर एक दूसरे पर इतना अत्याचार कर सकता है ? क्या उसको रत्ती भर भी दुःख नहीं होता है ? कभी-कभी मेरे मन में होता है कि जाकर रामप्यारी के पंजे से शान्ति को छीन लाऊँ, पर यह भी नहीं कर पाती। वह अपना अधिकार क्यों छोड़ेगी ? अब वे ही तो उसके अपने आदमी हैं। और..."

बात ख़तम न कर गायत्री बढ़ कर खिड़की के पास जाकर खड़ी हुई। किशोरी उस समय भी उसी तरह बैठ कर रो रही थी। चाँद की हलकी किरण उस समय उसके पास से दूर हट गई थी। इस समय उसका मुँह साफ़ नहीं दीखता था। धीमे स्वर से गायत्री ने पुकारा—"शान्ति ! शान्ति ! अभी तक जग कर बैठी-बैठी रो रही हो ? बीमार पड़ जाओगी, बेटी।"

शान्ति चौंक कर खड़ी हो गई। प्रतिकार-हीन पीड़न की व्यथा जब आँसू के रूप में झरती रहती है, तब कोई उसका गवाह रहे, यह कोई भी नहीं चाहता है। गहरी रात्रि की आड़ में छिप कर यह अभागी किशोरी प्रतिदिन ही वहीं बैठ कर अपनी वेदना का बोझा हलका करती है। आज एकाएक प्रकट हो जाने पर गहरी लज्जा से वह कुछ क्षण तक बोल नहीं सकी।

सान्त्वना-भरे मीठे स्वर से गायत्री बोलीं—"बहुत रात हो गई है, बेटी—अब सो जाओ। रोने से क्या फ़ायदा—कोई उपाय जो नहीं है।"

आँसू से दबे स्वर को बहुत प्रयत्न से सहज करके इस प्रसंग को बदलने के ख़्याल से शान्ति बोली—"आप अभी तक नहीं सोईं, बड़ी चाचीजी ! क्या आप इसी कमरे में थीं ?"

"नहीं, मैं अपने कमरे में थी। तुम्हें रोते देखकर रमेश मुझे बुला लाया। वह यह सब बात तो जानता नहीं न! इसलिये उसे आश्चर्य हो रहा था।"

शान्ति लज्जा से मर जाने लगी। रमेश का कमरा इतने दिनों तक बन्द था, इसीलिये वह निःसंकोच आकर यहीं बैठती थी। पर आज वह लौट आया है, यह उसके ध्यान में नहीं आया था। रमेश ने उसका रोना देखा है; देख कर फिर माता को बुला लाया है! कितनी करुणा से वह उसे देखता रहा होगा! शान्ति अपनी असतर्कता के लिये पश्चाताप करने लगी। चाहे वह कितनी दुःखी क्यों न हो, पर कोई उसे दया की दृष्टि से देखे यह असह्य है।

एक सोफे पर रमेश बैठा था। गायत्री की देह की आड़ से उसका कुछ भाग दीख रहा था। रूखी आंखों से शान्ति ने उसकी ओर देखा। रमेश पर वह नाराज हो उठी। दूसरे के घर में कौन कहां बैठकर क्या कर रहा है, देखने की—पता लगाने की किसीको क्या आवश्यकता है? उसका चित्त रमेश के विरुद्ध हो उठा।

गायत्री पूछने लगीं—"शान्ति, आज फिर क्या हो गया? शाम को सुनने में आया कि रामप्यारी किसीका निरादर कर रही है। आज तुमसे तो कोई गलती नहीं हो गई? क्या हुआ था?"

कठिनता से मुस्कराकर शान्ति बोली—"अम्मां को बिलख कर बातें करने की आदत है, चाचीजी! कोई खास बात तो नहीं हुई।"

"कोई खास बात नहीं हुई है, यह मैं समझ सकती हूँ; कोई खास बात हो जाने पर तुम यहां बैठ कर नहीं रोती

देही के दर्द से दो दिन के लिये विस्तर पर पड़ी-पड़ी कराहतीं !...खैर बेटी, जाओ, जाकर लेट जाओ। सुबह न उठ सकने पर बातें सुननी पड़ेंगीं। जाओ—"

शान्ति वहाँ से हट गई। गायत्री पुत्र के पास आकर खड़ी हुई।

रमेश अनमना होकर जाने क्या सोच रहा था। उसकी चिन्ता का अनुमान करके माता बोलीं—"तुम्हारे चाचा की गलती है, रमेश ! पुत्र और पत्नी को नहीं जानते थे, सो नहीं। उनको शान्ति के लिये दूसरा इन्तजाम करना चाहिये था।"

"मुझे भी ऐसा ही लग रहा है, अम्माँ ! अगर चाचा किसी दूसरी जगह उसकी शादी करते ! वे जब तक जिन्दा थे तब शायद इन लोगों ने शान्ति को इतना कष्ट नहीं दिया होगा ?"

माँ बोलीं—"कष्ट नहीं देता था ? अपनी प्रकृति कोई भला बदल सकता है ? इसके लिये तुम्हारी चाची दिन-रात तुम्हारे चाचा से झगड़ती थी। मैंने एक दिन तुम्हारे चाचा से कहा भी था कि शान्ति की कहीं दूसरी जगह शादी कर दो—लड़ाई-झगड़ा ठीक नहीं। देवर बोले कि 'उसके पिता को अन्तिम समय में वचन दिया था; और फिर शादी करने में खर्च भी तो है—बिना पैसे के तो होगी नहीं। मेरी हालत भी अच्छी नहीं है। ढेर भर रुपये खर्च करके किसी भले घर में उसकी शादी करूँ यह हो भी नहीं सकता। तो क्या करूँ' ?"

कुछ क्षण चुप रह कर रमेश बोला—"शादी नहीं हुई है, तिस पर ऐसा व्यवहार हो रहा है ! शादी होने पर वे कैसा व्यवहार करेंगे ?"

"शायद बचा डालेगा। शान्ति के लिये मुझे बहुत दुःख होता है। बेचारी बड़ी भली लड़की है।"

रमेश ने और कुछ नहीं कहा। गायत्री फिर एक बार उसे लौटने के लिये कह कर अपने कमरे में चली गई।

(२)

शान्ति का चित्त रह-रह कर जाने कैसा चंचल हो रहा था। कई सालों से यहाँ रह कर मिलनेवाले भोजन की तरह लांछन और अपमान उसे सहनीय हो गया था। विवश आँखें सजल हो उठने पर भी वह नहीं घबराती। उसे बहुत दुःख नहीं है। वह सोचती, भाग्य में ऐसा ही बदा था, नहीं तो ऐसा क्यों होता? बचपन में वह मातृहीन एकलौती सन्तान थी—उस पर पिता का अपार स्नेह था। कितना गहरे सुख, तृप्ति और आनन्द के बीच उसके जीवन की वे कुछ सालें बीती थीं! फिर मँडराया दुःख के दिन का बादल! मित्र के हाथों में कन्या को सौंप कर शान्ति के पिता परलोक सिधारे। अन्तिम समय में रोती हुई कन्या को सान्त्वना देकर पिता ने कहा था—'रामू के पास तुझे छोड़े जा रहा हूँ। वह तुझे मेरी तरह ही स्नेह करेगा, बेटी!'

यह सच है कि रामनाथ पिता की तरह ही शान्ति से स्नेह करता था। पिता ने मित्र को पहिचानने में भूल नहीं की, पर मित्र की पत्नी या पुत्र उसकी तरह नहीं भी हो सकते हैं, यह नहीं सोचा था। रामनाथ के सिवाय और किसी ने भी उसे स्नेह की दृष्टि से नहीं देखा। इसलिये कि वह उसके योग्य नहीं।

"अरे, ओ शान्ति? एक कड़ाही दूध चूल्हे पर रख कर तू बैठी है! दूध उबल कर गिर रहा है, क्या यह देख नहीं रही है?"

शान्ति बहुत अनमनी हो गई थी। रामप्यारी के स्वर से चौंक कर उसने दूध-भरी कड़ाई चूल्हे पर से उतार ली। उस समय तक काफ़ी दूध गिर चुका था। उस तरफ़ एक बार देखकर रामप्यारी बोली—"कलमुँही का ध्यान किधर रहता है? दूध की तरफ़ निगाह नहीं रख सकी? दूध के लिये पैसे लगते हैं!... सामने खड़ी मुँह क्या ताक रही है—हट सामने से!"

रामप्यारी के हाथ के धक्के से शान्ति दूर छिटक कर जमीन पर गिरी। चाहने पर भी वह उठ नहीं सकी। उस तरफ़ ध्यान न देकर रामप्यारी कहती गई—"कितनी परेशानी है! इससे एक भी काम नहीं हो सकेगा! जिस काम को करेगी—बरबाद होगा! इसे लेकर मैं क्या करूँ? मरने के समय मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। कैलाश का बाप मरने के दो साल पहले ही दिमाग़ खो चुका था, तभी न इस सत्यानाशी को घर लाया! मैंने ऐसी लड़की कहीं नहीं देखी! हे परमात्मा मैं क्या करूँ?"

शान्ति उठ कर बैठ गई। खिड़की का कोना लग कर उसके माथे पर चोट आई थी, वहाँ से खून बह रहा था। आँचल का छोर चोट पर दबा कर पीले और मलिन चेहरे से देखती रही। इस आघात के दर्द से अपराध का गुरुत्व ही उसे अधिक पीड़ित कर रहा था। अनेक कार्यों में उसकी ऐसी त्रुटि हो जाती। पिता के घर में उसे कोई काम नहीं करना पड़ता था, इसलिये वह कुछ भी करना नहीं जानती थी। इस कारण प्रयत्न करने पर भी वह अभी तक सब काम निपुणता से कर नहीं पाती है।

इधर के शोर से आकर्षित होकर कैलाश दालान में आकर खड़ा हुआ।

जज के सामने लाये गये अपराधी की तरह ही, कैलाश के आने से शान्ति मानो कुंठा के भार से और झुक गई। उसके रक्त से भरे मुख की ओर कई बार देख कर कैलाश ने सहज भाव से कहा—"आज फिर क्या हो गया, अम्माँ!"

पुत्र की ध्वनि सुन कर माता का क्रोध और बढ़ गया। ऊँचे स्वर से मा ने कहा—"होना क्या, बेटा! मेरी तक़दीर में जो बदा था, वही हो रहा है। तुम्हारे पिता ऐसी कमबख़्त लड़की को घर लाये कि तबाही ला रही है। एक दिन के लिये भी मुझे चैन नहीं मिलता। चूल्हे पर दूध चढ़ा कर मैंने कहा कि ज़रा देखती रहना। आकर क्या देखती हूँ कि वह चुप बैठी है और दूध उबल कर चूल्हे में गिर रहा है!"

और एक बार कैलाश ने शान्ति की ओर देखा। तीर से घायल पशु का कष्ट देख कर किसी का चित्त व्यथा और करुणा से भर उठता है, और कोई उससे आनन्द पाता है। मानव-हृदय का यह एक अजीब रहस्य है। व्यंग-भरे स्वर से कैलाश ने कहा—"उसे तो तुम जानती हो, फिर भी क्यों उसे काम में लगाती हो, अम्माँ! ग़लती तुम्हारी है।"

पुत्र का यह आक्षेप माता सहन कर गई। घाव पर निमक छिड़कने की तरह जिस पर यह कहा गया, वह भी समझी। शान्ति का झुका सिर और भी झुक गया। रक्त से भीगा आँचल उस समय काफ़ी लाल हो चुका था। ज़मीन पर भी कुछ रक्त की बूँदें बिखरी पड़ी थीं।

व्यथा से चञ्चल किशोरी के शान्त मुँह की ओर ताकते हुये [illegible] कुछ कहने जा रही थी, कि कैलाश ने इशारे से उसे चुप करके धीरे से कहा—"हमारे डाक्टर साहब खिड़की पर खड़े हैं।"

सामने के दोमंजिले की खिड़की पर रमेश चुप खड़ा था। सम्भवतः रामप्यारी के ऊँचे स्वर ने उसे यहाँ बुला लिया था। फिर भी उसके इस अचिन्तित आगमन से माता और पुत्र दोनों ही दिक हुये। मनुष्य चाहे जितना निर्लज्ज हो, प्रकृति की नग्न शक्ल दूसरे के सामने प्रकट करने में हिचकता है। फिर वह संकोच क्रोध में बदल जाता है। अपनी त्रुटि किसीकी दृष्टि में आवे, यह कोई नहीं चाहता है। दूसरे पर अपराध का बोझा डाल कर अपने को निर्दोष साबित करना मनुष्य की प्रकृति है। अपने घर की खिड़की से रमेश के इस तरह दूसरे के घर की तरफ़ देखते रहना कितना अन्याय है, यह झट रामप्यारी ताड़ गई। आँखें उठा कर तीव्र स्वर से बोली—"यूरोप जाकर तुम बड़े सभ्य हो आये, रमेश! दूसरे के घर की ओर—"

बात को खत्म करने न देकर रमेश ने सहज मुस्कान-भरे मुख से कहा—"दूसरे के घर में देखना ठीक नहीं है, यह जान कर भी मजबूर होकर देखना पड़ रहा है, चाचीजी! पर जो घटना आपने कर रक्खी है, वह देखने के लिये मुहल्ले के लोग नहीं आये हैं यही ग़नीमत है।—उनके माथे की हालत क्या हुई है यह तो देख लीजिये! अच्छी तरह से धोकर 'आयोडीन' लगा दीजिये।"

कैलाश क्षण भर रमेश की ओर क्रोध-भरी दृष्टि से देख कर वहाँ से चला गया। बचपन से एक साथ पलने पर भी कैलाश का रमेश से कोई स्नेह नहीं था—बल्कि द्वेष था। सब विषयों में रमेश श्रेष्ठ था। रमेश की यह श्रेष्ठता उसे दिन—रात चुभती है। कैलाश की दृष्टि में क्या भाव था, रमेश से छिपा नहीं रहा। वह मुस्कराया, फिर बोला—"चाचीजी, उनके माथे पर काफ़ी चोट लगी है। अभी धोकर बाँध दीजिये।"

बे-माँगा उपदेश सब समय तुष्ट नहीं करता है। रामप्यारी क्रोधित स्वर से बोली—"उसके लिये तुम्हें माथा-पच्ची करने की आवश्यकता नहीं है, बेटा! तुम जाकर अपना काम करो; उसकी चिन्ता करने के लिये और लोग हैं।"

रमेश का स्वर सुनकर शान्ति वहाँ से हट गई थी। दया कभी-कभी बहुत असह्य होती है। वह रमेश पर नाराज हो उठी। उसने क्यों उस पर इस तरह निगाह रक्खी है? उस पर लांछन चाहे जितना हो, क्यों वह उसमें गवाह होने के लिये आता है? वह दिन और रात उस कमरे में ही क्यों रहता है? अनिच्छा से भी उसकी आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी। आँखें पोंछकर ऊपर की ओर देखते ही उसने देखा कि रमेश खिड़की के पास एक आरामकुरसी पर लेटा है और उज्ज्वल दृष्टि उसीके मुँह पर निबद्ध है।

(२)

रमेश माता के साथ कुछ डरते-डरते इस घर में आया। रामप्यारी सामने ही थी। रमेश और गायत्री का आना उसको आनन्दित नहीं कर सका, यह उसकी गम्भीर मुद्रा से साफ प्रकट हो गया। गायत्री जाने क्या कहने जा रही थी; रोककर रामप्यारी बोली—"क्यों जीजी, घर में क्या आज काम-काज कुछ भी नहीं है? कहीं जाना है क्या? देखती हूँ कि सवेरे से घूम रही हो,—इसीलिये पूछती हूँ।"

गायत्री ने मुस्कराकर कहा—"काम है क्यों नहीं, भाभी! [illegible] उस समय शान्ति को देख गई। उसका [illegible] ज्यादा मालूम हुआ। इसीलिये रमेश को [illegible] आज देखा तो [illegible] क्या हुआ है। इसका मतलब है— [illegible]"

"तो इसके लिये रमेश को बुलाने की क्या आवश्यकता है? क्या हम लोगों का डाक्टर नहीं है, या हम लोग डाक्टर को बुलाना नहीं जानते हैं? रमेश अगर डाक्टर न होता, तो क्या सब बिना इलाज के मरते? वह इतने दिनों तक यहाँ नहीं रहा, तो क्या हम लोगों का इलाज नहीं होता रहा?"

सहज बातके ऐसे टेढ़े उत्तर से गायत्री मन ही मन दिक हुई, पर बाहर के शान्त भाव में परिवर्त्तन नहीं हुआ। जहाँ अपना काम बनाना है, वहाँ नाराज़ होना ठीक नहीं। बोलीं—"यह क्यों कह रही हो, रामप्यारी! यह तो मैंने नहीं कहा था। जब घर ही का लड़का डाक्टर है, तो दूसरों को पैसे क्यों दिये जायँ! यह सोचकर ही मैं उसे बुला लाई हूँ। तुम्हारे घर का लड़का कैसा डाक्टर बना क्या इसकी परीक्षा नहीं करोगी?"

चाहने पर भी स्निग्ध मीठी बात के उत्तर में सब समय कड़ी बातें कही नहीं जातीं! रामप्यारी चुप रही। गायत्री ने रमेश को साथ लेकर सामने के कमरे में प्रवेश किया। शान्ति को स्वाभाविक होश नहीं था। कुछ दिनों में ही ग्रहण लगे चाँद की तरह उसकी देह काली-सी हो गई है! आग का सेंक लगकर सूखे फूल की तरह उसके क्लिष्ट मुख की ओर देखकर व्यथित स्वर से रमेश बोला—"इसकी ऐसी हालत हो गई है? कब से बीमार पड़ी है?"

क्षुब्ध स्वर से गायत्री बोलीं—"सात-आठ दिनों से। कई दिनों से इसे देख नहीं पा रही थी। आज रामप्यारी से पूछा—उसने कुछ जवाब नहीं दिया। सोचा, बीमार न पड़ गई हो। आकर देखा कि सचमुच ही बीमार पड़ी है।"

रमेश अपना काम कर रहा था। उसके चेहरे की ओर देखते हुये घबराहट-भरे स्वर से गायत्री ने पूछा—"क्यों, कैसा देख रहे हो ?"

"अच्छा नहीं है, अम्माँ ! निमोनिया दोनों छाती पर फैल गया है।"

अन्त तक न सुनकर ही शंकित स्वर से गायत्री कह उठीं—"निमोनिया ! तो—"

रामप्यारी शायद द्वार की आड़ में खड़ी थी। इसी समय घबराती हुई कमरे में आकर रमेश की ओर देखती हुई बोली—"अच्छी तरह देखा ? क्या सचमुच वही मर्ज़ है ?"

"अच्छी तरह देखा, चाची ! हाँ, इसे डबल निमोनिया हो गया है।"

[illegible] एक काम करो। इसको किसी तरह अस्पताल में [illegible]

[illegible]

दो! अगर खुद न सेवा कर सकती हो, तो एक नर्स रख लो। यह कर सकोगी न ?"

यह सुनते ही रामप्यारी कड़क कर बोलीं—"हाँ, नर्स रख लूँ? क्या 'नर्स' मुफ्त में सेवा करेगी ? उसको रुपये नहीं देने पड़ेंगे ? क्या वह तुम दोगी, या तुम्हारा लड़का ?"

"चाहे मैं दूँ, या लड़का ही दे—एक ही बात है। पर वह खर्च हम लोग क्यों दें ? दो दिन के बाद तो वह तुम्हारे घर की बहू होगी।"

जो बिलकुल अनिच्छित है, वह दूसरे की जबान से सुनने में अच्छा नहीं लगता है। रुष्ट स्वर से रामप्यारी बोली—"बहू होगी ही, यह तुम लोगों ने कैसे जान रक्खा है ? इसका बाप मरने के समय अनाथ लड़की को हमारे घर छोड़ गया था, क्या इसीलिये इससे लड़के की शादी करनी ही होगी ? भला यह कोई बात है ? मेरा वैसा विद्वान लड़का है,—वह भला इससे क्यों शादी करेगा ?"

रमेश ने रोककर कहा—"यह सब बातें अभी रहने दीजिये, चाची! पर यह बताइये कि क्या सचमुच आप अपने घर में इलाज नहीं करवाना चाहती हैं ?"

"मजबूरी है, बेटा! मुझसे मरीज की सेवा नहीं होती।"

"पर कैलाश भैया ? वह क्या कहता है ? यह भी जानना जरूरी है।"

"कैलाश क्या कहेगा ? वह तो तुम्हारी तरह साहब बनकर नहीं आया है। उसने माँ की बात काटना कभी सीखा नहीं है।"

पुत्र के गर्व से रामप्यारी का चेहरा उज्ज्वल हो उठा। रमेश ने मुस्कराकर कहा—"फिर भी चाची, कैलाश भैया से पूछने में क्या हर्ज है। वह तो इस समय घर ही में है।"

! अगर खुद न सेवा कर सकती हो, तो एक नर्स रख लो। ह कर सकोगी न ?"

यह सुनते ही रामप्यारी कड़क कर बोली—"हाँ, नर्स रख ? क्या 'नर्स' मुफ्त में सेवा करेगी ? उसको रुपये नहीं देने ड़ेंगे ? क्या वह तुम दोगी, या तुम्हारा लड़का ?"

"चाहे मैं दूँ, या लड़का ही दे—एक ही बात है। पर वह ख़र्च हम लोग क्यों दें ? दो दिन के बाद तो वह तुम्हारे घर की बहू होगी।"

जो बिलकुल अनिच्छित है, वह दूसरे की जबान से सुनने में अच्छा नहीं लगता है। रुष्ट स्वर से रामप्यारी बोली—"बहू होगी ही, यह तुम लोगों ने कैसे जान रक्खा है ? इसका बाप मरने के समय अनाथ लड़की को हमारे घर छोड़ गया था, क्या इसीलिये इससे लड़के की शादी करनी ही होगी ? भला यह कोई बात है ? मेरा वैसा विद्वान लड़का है,—वह भला इससे क्यों शादी करेगा ?"

रमेश ने रोककर कहा—"यह सब बातें अभी रहने दीजिये, चाची ! पर यह बताइये कि क्या सचमुच आप अपने घर में इलाज नहीं करवाना चाहती हैं ?"

"मजबूरी है, बेटा ! मुझसे मरीज की सेवा नहीं होती।"

"पर कैलाश भैया ? वह क्या कहता है ? यह भी जानना ज़रूरी है।"

"कैलाश क्या कहेगा ? वह तो तुम्हारी तरह नादान बनकर नहीं आया है। उसने तो [illegible] बात काटना अभी सीखा नहीं है।"

पुत्र के गर्व से रामप्यारी का चेहरा उज्ज्वल हो उठा। रमेश ने मुस्कराकर कहा—"फिर भी चाची, कैलाश भैया से पूछने में क्या हर्ज है। वह तो इस समय घर ही में है ?"

"तो अच्छा, उसकी बात सुन ही लो। कैलाश! जरा इस कमरे में आना तो बेटा!"

रमेश रामप्यारी की दृष्टि को देखकर विस्मय से निर्वाक् हो गया। ठीक बगल के कमरे में बैठ कर कैलाश निर्विकार चित्त से सिगरेट पीता हुआ अखबार पढ़ रहा था। इस विषय में कुछ भी वह अनजान नहीं है। बातचीत सब ही सुन रहा था, फिर भी उसमें रत्ती भर चंचलता नहीं है। उसका भाव बिलकुल शान्त था। मानो कुछ भी नहीं हुआ था। माता की पुकार से इस ओर देख कर रमेश से कहा—"अम्माँ ने ठीक ही कहा है, भाई! मैं और क्या कहूँ?"

"क्या तुम भी उसे घर में रखना नहीं चाहते हो?"

"नहीं, मुझसे यह सब नहीं होता। और फिर अम्माँ की तबीयत भी ठीक नहीं है।"

"चाची की तबीयत खराब है, पर तुम तो स्वस्थ हो? क्या तुम इतना नहीं कर सकते हो? तो एक 'नर्स' ही रख लो। अस्पताल भेजोगे—यह कैसी बात है, यह ठीक नहीं है।"

सिगरेट में एक कश लगा कर कैलाश ने शान्त भाव से कहा—"क्या करूँ, भाई! कोई चारा रहने पर ऐसी बात नहीं कहता। और हम लोगों की हालत का आदमी भला 'नर्स' रख कर सेवा करा सकता है? इतना धन कहाँ पाऊँ? हम लोग तो धनी नहीं हैं। चाचाजी तुम लोगों के लिये बहुत धन छोड़ गये हैं, हाँ तुम जो चाहो कर सकते हो।"

रामप्यारी बोलीं—"इन सब फिजूल की बातों से क्या फायदा?—मेरे कहने का मतलब यह है कि जब शान्ति तुम

लोगों की आश्रिता है, तब उस पर तुम लोगों का कुछ कर्त्तव्य तो है।"

"हाँ, यह तो है, चाचीजी! जो जितना कर सकता है, उतना तो वह करेगा ही।"

"तो, कैलाश भैया, तुम्हारा कर्त्तव्य उसे अस्पताल तक भेजना ही है ?

"क्या कर सकता हूँ, भाई! लाचारी है।"

निद्रित को जगाया जा सकता है, पर जो जग कर निद्रित रहता है, उसे कौन जगा सकता है? फिर भी गायत्री कुछ कहने जा रही थी, कि रमेश ने रोक कर कहा—"और बहस करने से क्या फ़ायदा है, अम्मां? तुम्हारी इच्छा हो तो इसे अपने घर ही ले चलें। क्या यह ठीक नहीं?"

गायत्री के हृदय की बात ही रमेश ने कही। आनन्दित होकर वे बोलीं—"हाँ, ठीक है, रमेश! तो मैं ले जाने का इन्तज़ाम करूँ।"

रामप्यारी भी ख़ुश होकर बोली—"हां, ले जाओ! तुम्हारे घर में चार नौकर-नौकरानी हैं—एक मरीज के लिये जरा तकलीफ़ सहना कोई बड़ी बात नहीं है। कैलाश! मैंने ठीक कहा न? इन लोगों को कौन-सी असुविधा हो सकती है?"

"ठीक कहती हो। हां रमेश, तुम ले जाओ।"

इतनी आसानी से बला हट सकती है, यह उनकी कल्पना में भी कभी नहीं आया था। वे मन ही मन बहुत ख़ुश हो रहे थे।

गायत्री व्यस्त भाव से बोलीं—"तुम यहां खड़े न रहो, रमेश! तुम्हीं इसे ले जाने का इन्तज़ाम करो। मैं तब तक उसके पास रहूँ।"

नीची दृष्टि करके शान्ति बोली—"मैं और आपको तकलीफ देना नहीं चाहती। अच्छा होता अगर मुझे उस मकान में ही रहने देते। साधारण रोग था, आप ही आप अच्छी हो जाती।"

"साधारण रोग! तुम नहीं जानतीं, शान्ति, तुम्हारी क्या हालत हुई थी। उनके पास अगर रहतीं—हाँ, अच्छी हो जातीं—सदा के लिये अच्छी हो जातीं। यह सच है!"

एकाएक शान्ति के सूखे ओठों से निकला—"तो यह मेरे लिये बुरा नहीं होता। अच्छा होता।"

परिहास करके रमेश ने कहा—"हाँ, कैलाश भैया तुमसे छुटकारा पाकर खुश होता—तुम्हें आशीर्वाद देता!"

मनुष्य न जान कर एक दूसरे पर कितनी चोट करता है! शान्ति ने घायल पशु की तरह वेदना-भरी दृष्टि से एक बार रमेश की ओर देखकर दूसरी ओर आँखें फेर लीं। कैलाश के जीवन में वह अनिच्छित बोझ की तरह पड़ी है, यह उससे अनजान नहीं है! अपनी दीनता की ग्लानि चाहे जितनी हो, अपने में छिपा रख कर ही मनुष्य तृप्ति पाता है। दूसरे की जबान में उसका उल्लेख सहा नहीं जाता है! रमेश यह नहीं समझा। वह सहज मुस्कान भरे चेहरे से कहता गया—"अठारह दिन से तुम यहाँ हो। कैलाश भैया को कोई चिन्ता नहीं है। एक बार के लिये भी आकर तुमको नहीं देखा—और न कभी पूछा ही कि तुम कैसी हो?"

शान्ति के चेहरे पर व्यथा की छाया बादल की तरह मँडरा रही थी। रमेश ने शायद नहीं देखा, देख कर भी नहीं समझा।

धीरे से शान्ति ने पूछा—"क्या उन लोगों में से किसीने मेरी ख़बर नहीं ली ?"

व्याकुल दृष्टि से शान्ति एकटक रमेश के चेहरे की ओर देखती रही, जिस तरह अपने मुक़द्दमे का फैसला सुनने को उत्सुक व्यक्ति जज के मुँह की ओर देखता रहता है।

रमेश ने सिर हिला कर कहा—"तुम बिलकुल भोली हो! इतने सालों से उनके साथ रह कर भी उनको पहिचान नहीं सकीं! किसी तरह तुमको घर से निकाल कर वे खुश हुये हैं। अब भला घनिष्ठता रक्खेंगे! ऐसे बेवकूफ़ वे थोड़े ही हैं ?"

रमेश हँस उठा। इन बातों ने शान्ति के हृदय में कितनी व्यथा की छाप लगा दी, यह रमेश ने लक्ष्य ही नहीं किया। सूरज डूब रहा था, कमरे में एक तरफ़ उस समय भी धूप के कण चमक रहे थे। कुछ क्षण उस तरफ़ देखते हुये शान्ति ने सहसा कहा "मैं तो अब अच्छी हूँ ?"

रमेश उसके कहने का ढंग ठीक नहीं समझा। उसने कहा—"हाँ, अब तुम अच्छी हो—काफ़ी अच्छी हो।"

"तो आज मैं कहाँ जाऊँ ?"

"कहाँ ? कहाँ ? कहाँ तुम जाना चाहती हो ? इस घर में ?"

"हाँ, अब मैं यहीं जाऊँ।"

"अब भी तुम कहाँ जाना चाहती हो, शान्ति [illegible]"

रमेश के प्रश्न से उस [illegible] दृष्टि की ओर [illegible] नहीं; [illegible] सकी। [illegible] देने को [illegible] नहीं है—[illegible] भी वह मनुष्य, जो उसे मृत्यु के द्वार से बहुत [illegible]

लौटा लाया है, जिसने अयत्न और अवहेलना में उसके तुच्छ जीवन का अन्त न होने देकर स्वयं जिद करके अपने घर में लाकर स्वस्थ किया है, शान्ति की इस बात से शायद उसने शान्ति को कृतघ्न समझा। लेकिन क्यों, वह हजारों लाञ्छन और पीड़न का शिकार होकर उस घर की ओर आकर्षित है, इतना आदर और स्नेह तुच्छ करके भी—इसका उत्तर वह फिर भी नहीं दे सकी। उसका स्तब्ध मूर्त्ति की ओर क्षण भर देख कर रमेश ने कहा—"तुम इस समय अच्छी हो; पर इतनी स्वस्थ नहीं हुई हो कि आज ही उस घर में लौट जा सको। पर क्या उस घर में जाने के लिये तुम सचमुच ही बहुत उत्सुक हो, शान्ति? किस आकर्षण से? कहोगी नहीं? क्या कैलाश के...?"

रमेश की बात में जो व्यंग्य था वह छिपा नहीं रह सका। शान्ति चुप बैठी रही। रमेश मानो कुछ सुनने की आशा कर रहा था। निष्फल प्रतीक्षा में कुछ क्षण बिता कर रमेश ने थोड़े कठोर भाव से कहा—"इसमें शक नहीं कि कैलाश भैय्या बहुत भागवान् हैं!"

इस बात का भीतरी मतलब समझ कर भी शान्ति ने प्रतिवाद नहीं किया। रमेश क्रमशः अधीर हो उठ रहा था, उसने कहा—"अगर यहाँ से वह घर तुमको अधिक अच्छा लगे, तो चली जाना—हम रोकनेवाले कौन हैं? पर मैंने कुछ और ही सोचा था। तुम फिर उस घर जाना चाहोगी—यह मैं सोच ही नहीं सका था। मेरी ही गलती हुई है। उनका व्यवहार तुम पर चाहे जैसा हो—वे तुम्हारे अपने आदमी हैं। आज न सही, दो दिन के बाद तो अपने आदमी होंगे ही—इसलिये उन पर स्नेह होना, उनका आकर्षण रहना स्वाभाविक है। पर मैं डाक्टर हूँ, कर्त्तव्य के ख्याल से तुमसे अनुरोध कर

रहा है कि और कुछ दिनों तक यहीं रह कर स्वस्थ होकर फिर तुम जाना! मुझे इतना दुःख...खैर इस बात से क्या फायदा,—तुम अपनी दुर्बल देह का ख्याल करके मेरा अनुरोध मानो!"

शान्ति के वेदनापूर्ण मुख की ओर देख कर रमेश उठ कर खड़ा हो गया।

आघात करने में एक नशा है। अति प्रियजन को भी कठोर भाव से व्यथा दी जा सकती है, पर वर्षा के प्रवाह की भाँति जब क्षणिक उत्तेजना का बहाव हट जाता है, तब घायल और घायल करनेवाले दोनों की वेदना करीब-करीब बराबर ही हो जाती है। शान्ति का व्यथित चेहरा रमेश के चित्त में शूल-सा चुभने लगा। वह मानो कुछ कहने जा ही रहा था कि एक रकाबी में कुछ फल लिये गायत्री उस कमरे में आई। पुत्र के [illegible] तथा गम्भीर मुख की ओर देख कर कुछ विस्मय के साथ बोलीं—"क्या बात है, रमेश? तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो रहा है?"

माता की उत्कंठा से व्याकुल आँखों की ओर ताक कर कुछ [illegible] रमेश बोला—"कुछ नहीं, अम्मा! कोई बात [illegible] नहीं।"

माता फिर कुछ पूछने न लगें, इस डर से रमेश द्वार से बाहर निकल गया।

गायत्री तिपाई पर फल की रकाबी रख कर शान्ति [illegible] देखती हुई बोलीं—"तुम भी बहुत मलिन-सी [illegible] शान्ति! तबीयत तो अच्छी है?"

शान्ति ने बहुत प्रयत्न करके अपने को सम्हाल लिया था। शान्त और सहज स्वर से गायत्री की बात का उत्तर दिया—"नहीं, मैं अच्छी हूँ, बड़ी चाचीजी !"

(५)

महीने भर के पश्चात् एक दिन दोपहर को शान्ति को साथ लिये आँगन में आकर गायत्री ने पुकारा—"ओ रामप्यारी, क्या सो रही हो ?"

रामप्यारी भीतर की एक कोठरी में बैठ कर जाने क्या कर रही थी, बाहर आकर गम्भीर मुद्रा से बोली—"आओ, बैठो, कैसे आई ?"

शान्ति की ओर देखा भी नहीं; वह खड़ी है यह मानो वह जानना ही नहीं चाहती थी।

गायत्री स्वाभाविक मीठे स्वर से बोलीं—"कोई खास काम तो नहीं है, बहिन ! शान्ति को रख कर जाने के लिये आई हूँ—तुम अपनी चीज सम्हालो। तुम तो निश्चिन्त हो—इसकी याद भी नहीं करतीं,—पर यह यहाँ आने के लिये पागल थी।"

रामप्यारी की गम्भीर मुद्रा और भी गम्भीर हो गई। उसने क्षण भर चुप रह कर कहा—"इसे अगर न लातीं, तो ठीक करतीं !"

"क्यों ?"

रामप्यारी ने क्षण भर पसोपेश किया। शान्ति असहाय शंकित दृष्टि से उसकी ओर देखकर कुछ संकोच से रामप्यारी की बोली रुक गई।

उसकी इस दुविधा के भाव ने गायत्री को चिन्तित किया।

कठिन रोग से मुक्त शान्ति का पीला मुख क्रमशः और अधिक पीला हो उठ रहा था। गायत्री शंकित हो रही थीं;—सोच रही थीं कि शान्ति को साथ लाना शायद ठीक नहीं हुआ। रामप्यारी कहती गई—"कैलाश पढ़ा-लिखा है। जानती ही हो जीजी! कि आज कल के लड़के अपने मन की—पसन्द की लड़की से ब्याह करना चाहते हैं; माँ-बाप की बातें नहीं सुनते हैं! मैं क्या कर सकती हूँ—"

बातें करने का ढंग और इस भूमिका से शान्ति और गायत्री मन ही मन काँप उठीं! शान्ति गायत्री के पास और सरक आई। गायत्री बोलीं—"तुम क्या कहना चाहती हो, रामप्यारी?"

"मैं तो जीजी! कुछ भी कहना नहीं चाहती। कैलाश उससे ब्याह करना ही नहीं चाहता है। इसी बात पर दिन-रात उससे मेरा झगड़ा हो रहा है।"

"तो?"

शान्ति सिर झुकाये बैठी रही। रामप्यारी एक बार उसकी ओर देख कर बोली—"तो क्या? उसकी अगर इच्छा न हो, तो मैं क्या कर सकती हूँ, जीजी?"

"सो तो सही। पर असल बात क्या है?"

रामप्यारी बोली—"एक जगह कैलाश का ब्याह तय हो गया है।"

सुनकर शान्ति ने दूसरी ओर मुख कर लिया। गायत्री ने कहा—"कैलाश का ब्याह एक जगह तय हो गया है! यह क्या कह रही हो, रामप्यारी?"

शान्ति के कुम्हलाए मलिन मुख की ओर देख कर रामप्यारी के हृदय में जो थोड़ी करुणा जागृत हुई थी, गायत्री का [illegible]

क्षण भर में वह हट गयी। उसने कठोर भाव से कहा—"शान्ति से ही कैलाश का व्याह करना होगा—और किसी लड़की से कैलाश का व्याह नहीं हो सकेगा, ऐसी प्रतिज्ञा तो हम लोगों ने नहीं की थी !"

"देवर ने शान्ति के बाप को क्या वचन नहीं दिया था ?"

"कैलाश के बाप ने क्या सोच कर कहा था, उसके लिये हम जुम्मेवार नहीं हो सकते।"

गायत्री ने शान्ति का हाथ पकड़ कर उठाया। इस अपमानित किशोरी की व्यथा सारे हृदय से अनुभव करके गायत्री का चित्त रामप्यारी पर विषैला हो उठा। रामप्यारी से और अधिक बातें करने की इच्छा ही नहीं रही। इस इनकारी की—अपमान की ज्वाला कितनी तीव्र है, उनका नारी चित्त यह अनुभव कर के जल उठ रहा था। शान्ति को वे खींचती हुई ले चलीं। रामप्यारी साथ-साथ आती हुई कहने लगी—"तुम नाराज होकर जा रही हो, जीजी ! मेरी सब बात तो सुने जाओ। मैं—"

"कैफ़ियत देने की जरूरत ही क्या है, रामप्यारी ?"

तेज क़दमों से गायत्री अपने घर आई। दालान में आ गायत्री ने पुकारा—"रमेश !"

वह पास ही कहीं था। आकर कहा—"क्या अम्मां ?"

पुत्र के चिन्तित मुख की ओर देख कर मुस्कराने की कोशिश करती हुई गायत्री बोलीं—"कैलाश से शान्ति की शादी नहीं होगी। मेरी कन्या रहने पर तुम जैसे घर में उसका व्याह करते, वैसे घर का एक लड़का तलाश करो। जितनी जल्दी हो सके मैं इसकी शादी करूँगी।"

शान्ति की ओर एक बार देख कर रमेश ने कहा—"... बात है।"

"यह ठीक है। पर मैं इस अपमान को सहने नहीं दूँगी। कैलाश की शादी होने के पहिले ही मैं एक अच्छे लड़के से शान्ति की शादी कर देना चाहती हूँ। देर न होने देना बेटा!"

(६)

तीन बजे का समय था। उस समय आसमान पर सूर्य-किरणों से उज्ज्वल कुछ बादल जमा होकर क्रमशः मलिन हो रहे थे। फिर कुछ क्षणों में ही पृथ्वी पर गहरी छाया फेंक कर अँधेरा घना हो आया। रमेश बरामदे के एक किनारे पर आराम कुरसी पर बैठ कर एक पुस्तक पढ़ रहा था। पुस्तक के पृष्ठों से उसकी दृष्टि जाने कब जमा हो रहे उन बादलों पर जाकर अटकी थी, यह वह नहीं जानता था। वह बिलकुल तन्मय था। शान्ति की पुकार से वह चौंका। कहीं से एक तिपाई लाकर उस पर चाय का 'ट्रे' रख कर वह कह रही थी—"चाय पीजिये!"

बादलों की ओर देखते हुये रमेश जाने क्या स्वप्न देख रहा था, यह वही जानता है। उसकी आँखों में उस समय भी स्वप्न का आवेश था। विह्वल भाव से वह कुछ क्षणों तक शान्ति की ओर देखता रहा। फिर अपने को सहज कर लेकर मुस्कराते हुये कहा—"अच्छा, तुम चाय लाई हो! मेरे मन में चाय पीने की चाह हो रही थी और तुम ले आईं!..."

शान्ति प्याले में चाय उड़ेल कर दूध और चीनी मिलाकर चली जा रही थी। रमेश ने पुकार कर कहा—"क्यों चली जा रही हो, शान्ति! जरा यहाँ बैठो न? देखो, आसमान बादलों से ढँक कर कितना सुन्दर दीख रहा है। तुम्हें यह देखने की क्या इच्छा नहीं हो रही है?"

शान्ति मुस्करा कर बोली—"आप कवि हैं न? आपकी बातों से ऐसा ही लगता है।"

कवि ? रमेश मुस्कराया। कुछ क्षण दोनों ही चुप रहे। सहसा रमेश ने कहा—"इन बादलों की ओर देखते हुये मैं क्या सोच रहा था, सुनोगी, शान्ति ?"

फिजूल ही शान्ति का चेहरा लाल हो उठा। रमेश क्या सोच रहा था, इस पर रत्ती भर भी उत्सुकता प्रकट न करके वह घूम कर बोली—"मैं जा रही हूँ, बड़ी चाचीजी को शायद किसी काम में मेरी जरूरत पड़ जाय।"

विस्मित और व्यथित नयनों से रमेश जाती हुई शान्ति की ओर देखता रहा। इस तरह उसके जाने का कारण वह नहीं समझ सका।

गायत्री जाने किस काम से उधर आई थीं। रमेश को देखते ही उनको एक बात याद आ गई। उन्होंने कहा—"क्यों रमेश, आज तारीख में—बाबू श्यामलाल के घर तुम्हारे जाने की बात है न ? जाओ, लड़के को देख आओ, आज रविवार है, वे घर पर ही होंगे।"

रमेश बोला—"जरा आसमान की ओर तो देखो, अम्मा! बारिश आने ही वाली है।"

"पर, तुम तो मोटर पर जाओगे—चाहे बारिश हो या नहीं इससे क्या फर्क है। तुम रोज एक पर एक बहाना लगा रहे हो बेटा! ऐसा आलस्य करने पर इस महीने में शादी कैसे हो सकेगी?"

"इस महीने में न हो तो अगले महीने में हो जायगी।"

गायत्री नाराज होकर बोली—"चुप रहो। अगले महीने में तब वैसे आलसी से उसकी शादी ही नहीं होगी। नहीं बेटा, मैं किसी हालत में भी देर नहीं होने दूँगी।"

रमेश मुस्कराने लगा। अनुभवी डाक्टर जिस तरह रोगी की ओर देखकर उसके रोग का असल कारण समझ लेता है, उसी तरह गायत्री कुछ समय तक पुत्र की ओर देखती रहीं। फिर बोलीं—"मैंने कहा था कि कैलाश की शादी होने से पहिले ही शान्ति की शादी कर दूँगी, पर तुम तो मेरा वचन पूरा होने नहीं दे रहे हो। इसीलिये मैं सोच रही हूँ कि..."

"क्या अम्मां ?"

"तुमसे उसकी शादी कर दूँ।"

अप्रत्याशित मुक्ति की खबर जिस तरह चिरबन्दी को पुलकित करती है, साथ ही मन में सन्देह भी जागृत करती है—यह आकांक्षित वाणी,—क्या यह सच है ? रमेश भौंचक्का-सा माता की ओर देखता रहा। गायत्री अपने स्वर में दृढ़ता भर कर बोलीं—"यही ठीक है, रमेश! शान्ति पर मेरा बहुत स्नेह हो गया है—उसे छोड़ने को जी नहीं करता है। वह मेरे घर की लक्ष्मी बनकर रहे। तुम्हें कोई एतराज तो नहीं है ?"

रमेश [illegible]चाप सिर नीचाकर लिया।

(७)

[illegible] और इच्छा के साथ संसार की धारा [illegible]ी चलती है। शान्ति को वह जितना [illegible]ता है, शान्ति भी उसे उतना ही चाहती [illegible], रमेश की यही धारणा थी। शान्ति के [illegible] करने का कोई कारण उसकी निगाह में [illegible]। और पर शान्ति के अयोग्य नहीं है! [illegible] मनोभाव अस्वाभाविक नहीं थे। रमेश शान्ति को यह खुश खबरी सुनाकर, शान्ति के चेहरे पर कितनी तृप्ति की मुस्कान खिल उठती है यह देखने के लिये अधीर हो उठा।

रमेश मुस्कराने लगा। अनुभवी डाक्टर जिस तरह रोगी की ओर देखकर उसके रोग का असल कारण समझ लेता है, उसी तरह गायत्री कुछ समय तक पुत्र की ओर देखती रहीं। फिर बोलीं—"मैंने कहा था कि कैलाश की शादी होने से पहिले ही शान्ति की शादी कर दूँगी, पर तुम तो मेरा वचन पूरा होने नहीं दे रहे हो। इसीलिये मैं सोच रही हूँ कि..."

"क्या अम्माँ?"

"तुमसे उसकी शादी कर दूँ।"

अप्रत्याशित मुक्ति की खबर जिस तरह चिरबन्दी को पुलकित करती है, साथ ही मन में सन्देह भी जागृत करती है—यह आकांक्षित वाणी,—क्या यह सच है? रमेश भौंचक्का-सा माता की ओर देखता रहा। गायत्री अपने स्वर में दृढ़ता भर कर बोलीं—"यही ठीक है, रमेश! शान्ति पर मेरा बहुत स्नेह हो गया है—उसे छोड़ने को जी नहीं करता है। वह मेरे घर की लक्ष्मी बनकर रहे। तुम्हें कोई एतराज़ तो नहीं है?"

रमेश ने चुपचाप सिर नीचाकर लिया।

(७)

मनुष्य की चिन्ता और इच्छा के साथ संसार की धारा सदा मेल रखकर नहीं चलती है। शान्ति को वह जितना चाहता है—पसन्द करता है, शान्ति भी उसे उतना ही चाहती और पसन्द करती होगी, रमेश की यही धारणा थी। शान्ति के न चाहने और पसन्द न करने का कोई कारण उसकी निगाह के सामने नहीं आया था। और वह शान्ति के अयोग्य नहीं है! उसका यह मनोभाव अस्वाभाविक नहीं था। रमेश शान्ति को यह .खुश खबरी सुनाकर, शान्ति के चेहरे पर कितनी तृप्ति की मुस्कान खिल उठती है यह देखने के लिये अधीर हो उठा।

रमेश मुस्कराने लगा। अनुभवी डाक्टर जिस तरह रोगी की ओर देखकर उसके रोग का असल कारण समझ लेता है, उसी तरह गायत्री कुछ समय तक पुत्र की ओर देखती रहीं। फिर बोलीं—"मैंने कहा था कि कैलाश की शादी होने से पहिले ही शान्ति की शादी कर दूँगी, पर तुम तो मेरा वचन पूरा होने नहीं दे रहे हो। इसीलिये मैं सोच रही हूँ कि..."

"क्या अम्माँ ?"

"तुमसे उसकी शादी कर दूँ।"

अप्रत्याशित मुक्ति की खबर जिस तरह चिरबन्दी को पुलकित करती है, साथ ही मन में सन्देह भी जागृत करती है—यह आकांक्षित वाणी,—क्या यह सच है ? रमेश भौंचक्का-सा माता की ओर देखता रहा। गायत्री अपने स्वर में दृढ़ता भर कर बोलीं—"यही ठीक है, रमेश! शान्ति पर मेरा बहुत स्नेह हो गया है—उसे छोड़ने को जी नहीं करता है। वह मेरे घर की लक्ष्मी बनकर रहे। तुम्हें कोई एतराज़ तो नहीं है ?"

रमेश ने चुपचाप सिर नीचाकर लिया।

(७)

मनुष्य की चिन्ता और इच्छा के साथ संसार की धारा सदा मेल रखकर नहीं चलती है। शान्ति को वह जितना चाहता है—पसन्द करता है, शान्ति भी उसे उतना ही चाहती और पसन्द करती होगी, रमेश की यही धारणा थी। शान्ति के न चाहने और पसन्द न करने का कोई कारण उसकी निगाह के सामने नहीं आया था। और वह शान्ति के अयोग्य नहीं है! उसका यह मनोभाव अस्वाभाविक नहीं था। रमेश शान्ति को यह .खुश खबरी सुनाकर, शान्ति के चेहरे पर कितनी तृप्ति की मुस्कान खिल उठती है यह देखने के लिये अधीर हो उठा।

हाथ की सिलाई सामने टेबिल पर रखकर शान्ति ने एक बार रमेश की ओर देखा। क्षण भर के लिये उसकी सारी देह काँप उठी। फिर उसकी आँखों की कोरों से बड़ी-बड़ी आँसू की बूदें झरने लगीं। उसके इस अप्रत्याशित भाव ने रमेश को जितना विचलित किया, उतना ही व्याकुल भी। शान्ति के पास सरक आकर उसने कहा—"यह क्या, शान्ति! रो क्यों रही हो? इस बात से तुम क्यों रो पड़ीं?"

शान्ति बार-बार आँखें पोंछती रही। उसके ओस से भीगे फूल की तरह मुँह की ओर देखकर रमेश को एक दिन की बात याद आई। उस दिन हलकी चाँदनी में खिड़की के पास बैठी शान्ति के आँसुओं से मलिन मुख ने उसे मोह लिया था। शान्ति के काले बालों पर हाथ फेरते हुये उसने फिर कहा—"क्यों रो रही हो, शान्ति?...नहीं कहोगी?"

शान्ति चौंककर उसके स्पर्श से दूर हट गई। फिर आँखें पोंछकर काँपते स्वर से बोली—"चाचीजी से आप कह दीजिये—यह हो नहीं सकता।"

"हो नहीं सकता? क्या नहीं हो सकता, शान्ति?"

"आप लोगों ने जो निश्चय किया है।"

गहरे विस्मय और व्यथा से कुछ क्षणों तक रमेश बोल नहीं सका। शान्ति स्वयं ही बोली—"आप लोग मुझे क्षमा कीजिये। यह असम्भव है—यह असम्भव है।"

रमेश ने उसकी ओर कुछ क्षण देखते हुये पूछा—"पर क्यों, यह नहीं कहोगी? नहीं कहोगी कि क्यों तुम मुझको नहीं चाहती?"

शान्ति ने उत्तर नहीं दिया। बारिश हो जाने के बाद में हवा लगकर पेड़ के पत्तों में संचित जल-कण जिस तरह झरते

रहते हैं, उसी तरह शान्ति की आँखों से 'झर-झर' आँसू झरने लग गये।

एक ठंडी साँस लेकर रमेश बोला—"मेरी ही भूल हुई है, शान्ति! मैं तुमको चाहता हूँ, इसलिये तुम भी मुझको चाहोगी, यह सम्भव नहीं भी हो सकता है!—यह मैंने कभी नहीं सोचा था। पर एक बात मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ। क्या तुम अब भी कैलाश से प्रेम करती हो?"

शान्ति का सिर झुक गया। रमेश कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखकर फिर गाढ़े स्वर से बोल उठा—"आश्चर्य है! मैं सोच नहीं सकता, शान्ति, कि यह सम्भव है! उस हृदयहीन को तुम..."

रमेश सोफा से उठकर खिड़की के सामने जाकर खड़ा हुआ। पत्थर की जड़ मूर्त्ति-सी शान्ति एक ही भाव से सिर नीचा किये बैठी रही। एक ठंढी साँस लेकर कुछ गाढ़े स्वर से रमेश ने कहा—"अच्छी बात है, शान्ति! अम्माँ से कहूँगा। बबरन अपने जीवन के साथ बाँधकर मैं तुमको असुखी करना नहीं चाहता पर..."

क्षण भर चुप रहकर जाने क्या सोचकर रमेश ने कहा—"मैं कैलाश भैय्या से आज ही कहूँगा। यह सुनने पर शायद वह .."

व्यग्र तथा व्याकुल स्वर से शान्ति बोली—"नहीं, नहीं .. आप उनसे कुछ भी न कहिये!"

"न कहूँ? तो...?"

"मेरे लिये चिन्ता न कीजिये। मेरा जीवन इसी भाव से किसी तरह कट जायगा। जब वे मुझको नहीं चाहते हैं, तब मैं भी जबरन उनसे बँधना नहीं चाहती हूँ।"

शान्ति ने दोनों हाथों से गायत्री को आलिंगन करके कहा—"फिर भी तुम यह सब कहती हो, अम्माँ! मैं जो तुम्हारी पुत्री हूँ!"

"नहीं शान्ति, मैं तेरी एक भी बात नहीं सुनूँगी। मैं तुझे जाने नहीं दूँगी। तू अभी बच्ची है बेटी, तू दुनिया क्या समझेगी? तुझे मैं अपनी मर्जी से चलने नहीं दूँगी। नहीं मैं तुझे किसी तरह भी नहीं जाने दूँगी। तू नहीं जा सकेगी!"

"तुम्हारे मना करने पर मैं नहीं जा सकती—अम्माँ! मेरी अम्माँ! पर तुम मुझे मत रोको! मुझसे यहाँ रहा नहीं जायगा,—मुझे जाने दो, पैरों पड़ती हूँ—मुझे जाने दो!"

"पर क्यों, यह तुझे कहना ही पड़ेगा। किसके लिये तू इस तरह जीवन को नष्ट कर रही है? उससे तुझे क्या मिला? उसने तुझे क्या दिया है?"

शान्ति ने उत्तर नहीं दिया, केवल आँसू भरी आँखों को उठाकर एक बार गायत्री की ओर देखा। गायत्री और कुछ नहीं बोलीं। वे मानो अब सब समझ गईं। उन्होंने केवल एक बहुत गहरी साँस ली।

रमेश अब चुप रहकर इस दुःखी नर्वस्त्रिना किशोरी की ओर देख रहा था। अब उसने कहा—"क्या तुम यहाँ रह नहीं सकती, शान्ति, किसी तरह भी नहीं रह सकती?"

"मुझे क्षमा कीजिये!"

क्षण भर चुप रहकर रमेश बोला—"क्षमा की कोई बात नहीं, शान्ति! अगर दूर चली जाकर तुम्हें शान्ति मिले—तुमको तृप्ति मिले, तो तुम जाओ। नहीं रोकूँगा। पर एक अनुरोध है, अगर कभी जरूरत पड़े, तो हम लोगों को याद करना।"

शिक्षा

मसूरी,
१६ मई

कमला,

हम लोग मसूरी आ गये हैं—माँ, पिता और मैं। तुम अवश्य ही इससे चकित होगी। इण्टर की परीक्षा के पश्चात् कुछ दिनों तक तुम्हारे पास रहने की बात थी—पर यह नहीं हो सका। तुम इसलिये कदाचित् मुझ पर नाराज़ होगी। पर क्या करूँ बहिन, परीक्षा के लिये कुछ अधिक श्रम करना पड़ा था, शायद इस कारण मेरी तबीअत कुछ ख़राब हो पड़ी। पिता ने कहा कि, परीक्षा के बाद देहली में कमला के पास जाने की बात थी, पर इस गर्मी के मौसम में अस्वस्थ शरीर लिये वहाँ जाना ठीक नहीं होगा,—दो-तीन महीने मसूरी में रहने पर तुम स्वस्थ हो जाओगी। सुतरां मंसूरी आने की बात ठहर गई।

मैं और कभी पहाड़ नहीं आई थी। लोग कहते हैं कि मंसूरी 'पहाड़ों में रानी है।' यहाँ का प्राकृतिक दृश्य मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। समतल प्रदेश के निवासियों की आँखों में यहाँ के पेड़-पौधे, फल-फूल, बर्फ से ढँके हिमालय का दृश्य एक सौन्दर्य का मोह उत्पन्न कर देते हैं। इस प्राकृतिक अतुल सौन्दर्य का कुछ उपभोग कर पाने पर भी इसे वर्णन करने की शक्ति मुझ में रत्ती भर नहीं है।

भी हुई है कि शायद हम लोगों का विवाहित जीवन सुख का नहीं होगा।

यहाँ आने के दो सप्ताह पहिले मेरे ममेरे भाई मिलने के लिये आये थे। मैं उनके साथ बात करते-करते फाटक तक गई कि अमरनाथजी आये। ममेरे भाई की भी शादी ठहर गई है। मैं उनसे उनके विवाह के बारे में ही बात कर रही थी। वे पहिले कहते थे कि, पति-पत्नी का प्रेम केवल स्वार्थ का रिश्ता है,—उन्होंने जीवन भर अविवाहित रहने का संकल्प किया था। इतने दिनों के बाद उनका संकल्प टूट गया, इसीलिये मजाक करके हँस-हँसकर उनसे बात कर रही थी। यह देखकर अमरनाथजी के आनन्दपूर्ण चेहरे पर एक जाने कैसी छाया पड़ गई। मेरे ममरे भाई से उनका परिचय नहीं था,—सोचा था कि परिचय करा दूँगी, पर वे वहां क्षण भर के लिये भी न ठहर कर मकान के अन्दर चले गये। ममेरे भाई ने क्या सोचा यह मुझे पता नहीं, पर मैं कुछ बेचैन हो गई। बैठक में जाकर देखा कि अमरनाथजी एक अंगरेजी सचित्र साप्ताहिक के पन्ने उलट रहे थे। पिताजी ने मुझसे कहा कि बेटा अमरनाथजी को चाय पिला दो। तब अमरनाथजी ने कहा कि, नहीं आज नहीं पिऊँगा, मुझे जल्दी जाना है। लेकिन मैं समझ गई कि यह सब निरी मान की बातें हैं। मैं चाय ले आई, उन्होंने पी भी ली, किन्तु उस दिन मुझसे कोई विशेष बात नहीं हुई। वे पिताजी से दो-चार बात करके और साप्ताहिक की तस्वीरें देख कर चले गये। उनके स्वभाव की इस दुर्बलता को ईर्ष्या कहूँ, या क्या कहूँ, मुझे समझ नहीं पड़ रहा है, पर इससे अपने भविष्य के विषय में सचमुच ही मुझे शंका हो रही है। इस ईर्ष्या से—पति पर पत्नी का और पत्नी

हिस्सों में लोग आ गये हैं। सबका परिचय भी नहीं जानती हूँ, और सबके बारे में लिखने पर बड़ी पोथी बन जायगी। जिनसे मेरी कुछ घनिष्ठता हुई है, मैं केवल उनके बारे में लिख रही हूँ। मेरठ के एक डिप्टी कलक्टर अपनी दो कन्याओं और एक पुत्र रमेश के साथ हम लोगों के आने के बहुत पहिले से छत्र के दो हिस्से लेकर रह रहे हैं। और सुलतॉंपुर के एक जमींदार, जगदीशचन्द्र, अपनी माता के साथ हमारे आने के दो दिन पहले आये हैं। रमेश बाबू ने एम० ए० कर लिया है और पी० सी० एस० की तैयारी कर रहे हैं। वे सुन्दर हैं, हृष्ट-पुष्ट हैं—बड़े उत्साही युवक हैं। दोनों लड़कियाँ भी सुन्दर हैं और घर ही में शिक्षित होने पर भी काफ़ी शिक्षित हैं। मैं इन तीनों भाई-बहिनों के व्यवहार से मुग्ध हो गई हूँ। मैंने इतने सरल, स्नेहशील मनुष्य बहुत कम देखे हैं।

पर मुझे सबसे अधिक जगदीशचन्द्र जँचे हैं। उनका चेहरा बहुत ही सुन्दर है। ऐसा निर्दोष सौन्दर्य मैंने देखा नहीं है। वे जैसे सुन्दर हैं, उनका स्वभाव भी वैसा ही मधुर है, पर प्रकृति कुछ गंभीर है। बहुत बचपन में ही जगदीशचन्द्र के पिता की मृत्यु हो गई थी। उनकी जमींदारी बहुत बड़ी है, लखनऊ में भी बहुत सम्पति है—वे ही अब सब के मालिक हैं। रमेश और उनकी दोनों बहिनें तथा मेरे सिवाय और किसी से वे विशेष मेल-जोल नहीं रखते हैं अधिकांश समय मेरे पास रहते हैं, मुझीसे गप-शप करते हैं, उन्हें मेरे गाने बहुत पसन्द हैं। उनकी बात-चीत, आचरण, व्यवहार और हाव-भाव देखकर लगता है कि वे मुझसे बहुत स्नेह करते हैं। उनकी माँ अभी परसों कह रही थी कि मैंने जादू के द्वारा उनके पुत्र को वश में कर लिया है।

-ति फूल लाकर मेरे तकिये के निकट रख कर, संध्या तक सिरहाने बैठ कर वे मेरा माथा दबाते रहे। उनके कोमल के स्नेह-स्पर्श से मुझे बहुत शान्ति मि ी। मेरे सिर में रण दर्द हुआ था, इतने से ही वे बहुत घबरा गये,—मेरी अत कैसी है, किस दवा से मुझे आराम मिलेगा, यह सब ार-बार पूछने लगे। जगदीशचन्द्र मुझसे स्नेह करते हैं, इन छोटी-मोटी घटनाओं से मैं अच्छी तरह समझ पा रही और मैं भी दिन-पर-दिन उनके स्नेह से जकड़ती जा ी हूँ।

आपने लिखा है कि आपसे जो मेरी शादी ठहर गई है, ह बात अवश्य ही मैंने जगदीशचन्द्र से छिपाई है। आपकी ह धारणा बिलकुल ग़लत है। एक दिन अपने हाथ से रा 'नेकलेस' का 'लाकेट' खोल कर आपका फ़ोटो देख कर, न्होंने पूछा कि यह किसका फ़ोटो है। मैंने कहा कि यह आपका फ़ोटो है और यह भी कहा कि आपसे मेरी शादी भी ठहर गई है। इस बात से जगदीशचन्द्र के भावों में कोई अन्तर या उनके व्यवहार में किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं देख पाया। बल्कि एक घटना से वे मुझसे बहुत प्रेम करते हैं, मैं इस बात का सबूत पा गई। मैं समझ रही हूँ कि यह बात सुन कर आप बहुत नाराज़ हो जायँगे; पर मैंने तो कभी आपसे कोई बात नहीं छिपाई है, इसलिये इस बात को भी आपसे गुप्त नहीं रख सकती हूँ।

एक दिन, हाल ही में, हम दोनों बैठ कर गप-शप कर रहे थे। सहसा जगदीशचन्द्र ने खड़े होकर, अपने दोनों हाथों से मेरा मुँह ऊपर को उठाकर कहा कि मैं उनको बहुत ही अच्छी लगती हूँ—उनको मुझसे प्रेम करने की तीव्र इच्छा रहती है!

फिर—आपसे मैं कुछ भी नहीं छिपाऊँगी—उन्होंने दोनों हा
से मेरी गरदन घेर कर मेरे गाल पर एक चुम्बन किया!
मुझ से स्नेह करते हैं, यह उनकी बातचीत और व्यवहार
कुछ समझ पाने पर भी, उनके स्नेह की बात उस दिन प्र
बार उनकी जुबान से सुनी है और उसका सबूत भी पा ग
आप नाराज न होइये, मेरी बात पर विश्वास कीजिये कि
निःस्वार्थ और निर्मल प्रेम है—इसमें रत्ती भर भी मलिन
नहीं है।

—आपकी, निर्मल

× × ×

मसूरी
५ जून

प्रियतम,

आपका पत्र मिला। आपके निकट कोई बात गुप्त न
कर सत्य घटना सरल भाव से मैंने आपको लिख दी
लिखने में मुझे रत्ती भर भी दुविधा नहीं हुई थी। मैंने
की थी कि आप गलत नहीं समझने लगेंगे। मैं यह समझ
कि मेरे प्रेम पर आपका विश्वास कितना क्षीण है। मैं
तन-मन से आपसे प्रेम करती हूँ, यह बात यदि आप वि
करते, तो कभी भी आप इतना विचलित न होते, क्रोध से
पागल न होते। आपने मुझे 'कपटी' और 'छली' कह कर
तिरस्कार किया है, आपने मेरी शिक्षा और [illegible]
निन्दा की है, और फौरन मसूरी जाने के लिये आपने मुझे
मजबूर भी किया है। आप शंकित हो गये हैं कि मैंने कि

वेहया की तरह कैसे जगदीशचन्द्र के घृणित आचरण की बात आपको लिख डाली है और मेरा कितना गहरा पतन हुआ है, आप इसका भी सबूत पा गये हैं।

सब आपकी भ्रांति है। मैंने कोई भी बुरा या निन्दा के योग्य कार्य नहीं किया है। आपसे मैंने कपट भी नहीं किया है, वरना मैं जगदीशचन्द्र से सम्बन्धित एक भी बात आपको नहीं लिखती। मेरा पतन नहीं हुआ है, आपके सतर्क कर देने पर भी अपने को सम्हालने का कोई कारण मैं नहीं ढूँढ़ पा रही हूँ। मैंने आपको रत्ती भर भी धोखा नहीं दिया है। आप पर मेरा प्रेम ज्यों का त्यों है, जगत् में ऐसा कोई भी नहीं है, जो आपसे मुझे विच्छिन्न कर सकता है।

आपने यहाँ से फ़ौरन चले आने के लिये लिखा है, पर यह कैसे सम्भव हो सकता है। यहाँ आकर मेरी तबीअत बहुत सुधर गई है, और आपको नहीं देख पा रही हूँ यही केवल एक दुःख है, वरना सब तरह से मैं सुखी और आनन्दित हूँ। जगदीशचन्द्र यहाँ और महीना भर रहेंगे, हम लोगों का विचार भी यहाँ एक महीना रहने का है। जगदीशचन्द्र के अनुरोध से ही पिताजी ने यह निश्चय कर लिया है।

यहाँ से फ़ौरन न चले आने पर आपने डराया है कि आप स्वयं आकर मेरे पिता-माता से सब बात कह कर हम लोगों को वापस ले जायँगे और जगदीशचन्द्र को अच्छी-खासी शिक्षा देंगे। हाँ, आप आइये, आपके आने पर आपको दो-चार दिन के लिये देख तो पाऊँगी। और आपने जगदीशचन्द्र को शिक्षा देने की जो धमकी दी है, आशा है कि आप उनसे कोई अशिष्ट व्यवहार नहीं करेंगे, और मुझे विश्वास है कि आप

यह कर भी नहीं सकेंगे। खैर, यह तो पीछे की बात है, अवश्य आइये। मैं आपकी प्रतीक्षा में हूँ।

—आपकी, निर्मला

× × ×

म०

१३ जून।

कमला,

मैंने कभी कल्पना नहीं की थी कि तुम भी गलत धारणा कर लोगी। अमरनाथजी ने ईर्ष्या से अन्धे हो कर मुझे जो निर्मम पत्र लिखा है, उससे मैं क्षुब्ध और दुःखित हो गई थी, पर तुमने मुझे जो हृदयहीन, उच्छृंखल और अमरनाथजी के प्रेम के अयोग्य लिखा है, इससे मैं और भी व्यथित हो गई। अन्त तक सब कुछ जान कर तब तुम्हें अपनी राय क़ायम करनी चाहिये थी।

जगदीशचन्द्र का संग छोड़ कर दूर चले जाने पर मेरा शोक कम हो जायगा, यह सोच कर उन्होंने यहाँ से मुझे चले आने के लिये लिखा है। अगर न जाऊँ, तो स्वयं यहाँ आकर माँजी से सब बात कह देंगे और मैं यहाँ न रह पाऊँ इसकी चेष्टा करेंगे, और जगदीशचन्द्र को अच्छी तरह शिक्षा देंगे—ये सब लिख कर उन्होंने धमकी दी है। हम लोग इस समय तीर्थ नहीं जा सकते हैं। उन्हें आने के लिये लिख दिया था और वे आये भी थे।

वे जब आ पहुँचे, तब मैं घर में नहीं थी, तब हम लोग विक्टोरिया-रोड पर टहल रहे थे—मैं और जगदीशच

माँ-बाप से मिलकर, जैसे ही उन्होंने सुना कि हम लोग कैमिल्स-बैंक रोड पर टहलने गये हैं, वे भी उसी ओर दौड़े हुये आये। पिता ने उनको विश्राम करने के लिये अनुरोध किया और कहा कि नौकर भेजकर हम लोगों को बुला लेंगे—पर उन्होंने नहीं माना। यहाँ आते ही मुझे और जगदीशचन्द्र को अच्छी शिक्षा देने का अवसर पा गये थे। ईर्ष्या की ज्वाला से पागल होकर, हम लोगों के अपराध की उचित सजा देने का पक्का विचार करके वे जब हमारे निकट आ पहुँचे, तब मैं पहले नहीं देख पाई थी। वे पीछे की ओर से आये थे।

उनका क्रोधित चेहरा देख कर जगदीशचन्द्र के ज़रा घबरा कर हट जाते ही मैंने मुँह फेर कर देखा—अमरनाथजी हैं! क्षण भर के लिए मैं विचलित हो गई थी, पर उसी क्षण अपने को सम्हाल कर मैंने कहा कि इतनी दूर के सफ़र से आकर यहाँ अगर दौड़े हुये न आते और किसीसे हम लोगों को खबर भेज देते, तो अच्छा था। खैर, अच्छा हुआ कि आप आये हैं। आइये, यहीं जगदीशचन्द्र से आपका परिचय करा दूँ—आप ही जगदीशचन्द्र हैं!

क्षण भर में अमरनाथजी के चेहरे के भाव में परिवर्तन हो गया। उनकी लाल-लाल आँखें विस्मय से फैल गईं, उनकी क्रोध से काँपती देह स्तब्ध हो गई और उनकी बन्द मुट्ठियाँ शिथिल हो गईं। फिर वे दो क़दम बढ़ आये—क्या अपनी मोटी-मोटी मुट्ठियों से जगदीशचन्द्र की छाती तोड़ देने के लिये? नहीं, उन्होंने उस सुन्दर आठ वर्ष के बच्चे को दोनों हाथों से उठा कर हृदय में चिपका लिया। जगदीशचन्द्र की उम्र आठ साल के लगभग थी।

जगदीशचन्द्र को देखने पर उन्हें भी स्नेह करना पड़ेगा, यह मैंने अमरनाथजी को लिखा था, यह बात उनको याद दिला दी। उन्होंने बहुत ही लज्जित होकर कहा कि उनको जो शिक्षा मिली यह वे जीवन में कभी भी नहीं भूलेंगे।

जगदीशचन्द्र की उम्र मैंने छिपाई थी, इसके सिवाय तुम लोग मेरा और कोई अपराध नहीं ढूँढ़ पाओगी। पर अमरनाथ-जी के रोग के प्रतिकार के लिये मुझे यह कौशल करना पड़ा था। फल भी आशा से अधिक मिला है। केवल उनकी भ्रांति दूर नहीं हुई, बल्कि अपने स्वभाव की दुर्बलता भी वे अच्छी तरह समझ गये हैं। और अब मुझ पर उसका गहरा विश्वास है।

तुम्हारी, निर्मला।

माँ

सिविल सर्विस का इम्तहान पास करने के बाद मैं दो साल से,.....में असिस्टेन्ट मैजिस्ट्रेट हूँ।

मेरे जीवन की कविता, सङ्गीत और आनन्द झूठी बातों के वायुमण्डल में कुचले जा रहे हैं।

गवाहों की सरासर झूठी गवाही सुनकर जी घबराता है, और मैं सोचता हूँ—शायद झूठ ही इन मनुष्यों का सब कुछ है।

मगर उस दिन एक अनोखी घटना हो गई। यह घटना सच है, इसीलिये यह उपन्यास से कहीं अधिक वास्तविक है।

कठघरे में एक अधेड़ औरत आकर खड़ी हुई। यह एक मज़दूर-घराने की विधवा थी। उसके चेहरे से ग़रीबी साफ़ नज़र आती थी। मगर उसके पीले मुँह पर एक असाधारण ज्योति टपक रही थी।

उसकी आँखों में आँसू डबडबा रहे थे। दबा हुआ रोदन राह भूलकर उसकी आँखों को चंचल और गीली कर रहा था।

मुक़दमा यह था—लड़का उसका अवतार क़त्ल के अपराध का मुजरिम था—उसका एकलौता लड़का मृत्यु के दरवाज़े पर! पुलीस का बयान था—मुजरिम मुहल्ले की एक लड़की से मोहब्बत करता था। लड़की के माँ-बाप उसकी शादी अवतार से करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने अवतार के कुछ रुपया भी लिया था।

मगर मनुष्य की तृष्णा का अन्त नहीं है। कुछ दिनों बाद एक दूसरे आदमी ने उस लड़की से शादी करने का प्रस्ताव किया। उन लोगों को यह आदमी, अवतार से हर बात में ज्यादा योग्य मालूम हुआ।

अब लड़की के माँ-बाप अवतार को भगाने की कोशिश करने लगे। मगर अवतार अपना हक़ नहीं छोड़ना चाहता था। बस, फिर क्या था—झगड़ा शुरू हो गया।

अवतार अपने क़ौम के चौधरी के पास न्याय के लिये गया। पंचायत बुलाई गई। अवतार जीत गया। मगर दूसरा पक्ष मानने वाला नहीं था।

बाबूलाल रधिया को देखकर पागल हो गया था। वह किसी तरह उसे छोड़ने के लिये तैयार नहीं था।

झगड़ा दिन पर दिन बढ़ने लगा। दोनों पक्ष बहस करने [illegible] गये। बाबूलाल ने फिर पंचायत कराई। रुपये के जरिये से उसने कुछ लोगों को अपनी तरफ खींच लिया था। आखिर में वह जीता। वहां अवतार से बहस होते-होते मार-पीट होते-होते रह गई।

मगर उस दिन से अवतार और बाबूलाल में गहरी दुश्मनी हो गई।

बाबूलाल से रधिया की शादी हो गई। जोश में आकर उसने [illegible] कर डाला।

अवतार ने जोश में आकर गँड़ासा उठा कर जोर से बाबू-लाल के सिर पर दे मारा। एक ही चोट से बाबूलाल गिरा और मर गया। रधिया झगड़े के समय में ही भाग गई थी, नहीं तो वह भी नहीं बचती।

इस हत्या का एक ही गवाह था और वह थी—अवतार की मां। पुलीस के सामने अवतार ने क़त्ल करना स्वीकार किया था, मगर पीछे क़ानून की सहायता पाने पर, वकील की सलाह से सब अस्वीकार कर दिया।

यह हत्या दिन में होने पर भी गवाह या सबूत कुछ नहीं था, इसलिये पुलिस बहुत घबराहट में थी।

गवाह कठघरे में आकर खड़ा हो गया; मुजरिम की ज़बान से एक अस्फुट शब्द निकला "माँ!" माँ ने लड़के की ओर देखा; उसका रुका हुआ रोदन बाहर निकलने की चेष्टा कर रहा था। जिरह होने लगी—

सवाल था—"क्या इस मुजरिम ने यह क़त्ल किया था?"

माँ बोली—"हां।"

मैं आग्रह के साथ माँ की ओर देखने लगा। उसके चेहरे पर मानसिक हलचल का निशान साफ़ दीख पड़ता था—मातृ-स्नेह और कर्त्तव्य-ज्ञान में भयानक लड़ाई छिड़ी हुई थी।

"तुमने अपनी आँखों से क़त्ल करते देखा है?"

फिर माँ ने संक्षिप्त जवाब दिया—"हाँ।"

"तुम जो कुछ कह रही हो, क्या उसका परिणाम जानती हो?"

"जानती हूँ।"

"तुम्हारे लड़के को फाँसी हो सकती है, क्या यह तुम्हारे ख्याल में आया है?"

अवतार ने जोश में आकर गँड़ासा उठा कर ज़ोर से बाबूलाल के सिर पर दे मारा। एक ही चोट से बाबूलाल गिरा और मर गया। रधिया झगड़े के समय में ही भाग गई थी, नही तो वह भी नहीं बचती।

इस हत्या का एक ही गवाह था और वह थी—अवतार की माँ। पुलीस के सामने अवतार ने क़त्ल करना स्वीकार किया था, मगर पीछे क़ानून की सहायता पाने पर, वकील की सलाह से सब अस्वीकार कर दिया।

यह हत्या दिन में होने पर भी गवाह या सबूत कुछ नहीं था, इसलिये पुलिस बहुत घबराहट में थी।

गवाह कठघरे में आकर खड़ा हो गया; मुजरिम की ज़बान से एक अस्फुट शब्द निकला "माँ !" माँ ने लड़के की ओर देखा; उसका रुका हुआ रोदन बाहर निकलने की चेष्टा कर रहा था। जिरह होने लगी—

सवाल था—"क्या इस मुजरिम ने यह क़त्ल किया था ?"

माँ बोली—"हाँ।"

मैं आग्रह के साथ माँ की ओर देखने लगा। उसके चेहरे पर मानसिक हलचल का निशान साफ़ दीख पड़ता था—मातृ-स्नेह और कर्त्तव्य-ज्ञान में भयानक लड़ाई छिड़ी हुई थी।

"तुमने अपनी आँखों से क़त्ल करते देखा है ?"

फिर माँ ने संक्षिप्त जवाब दिया—"हाँ।"

"तुम जो कुछ कह रही हो, क्या उसका परिणाम जानती हो ?"

"जानती हूँ।"

"तुम्हारे लड़के को फांसी हो सकती है, क्या यह तुम्हारे ख्याल में आया है ?"

सुशीला

बहुत दिनों के पश्चात् सुशीला के साथ फिर मेरा साक्षात् हुआ था—अकस्मात् और अचिन्तनीय रूप से...

मुझे याद है—बहुत दिन पहले वह हमारे मकान के बगल में रहती थी। तब वह एक छोटी बच्ची थी। उसका हृदय काँच की तरह स्वच्छ था। उस समय उसके हृदय में कोई विकार की रेखा नहीं खिंच सकती थी। मगर मैं किशोर अवस्था में था, इसलिये मेरे हृदय में रेखा खिंच गई थी।

उस समय मैं चोरी से उपन्यास पढ़ता था, और उपन्यास के ढंग की कल्पनाओं से मेरा मन भरा रहता था।

सुशीला मुझे अच्छी लगती थी। उसका चेहरा बहुत सुन्दर था—आँखें बड़ी-बड़ी। कभी-कभी वह मेरे कमरे में आकर शरारत करती थी, मैं तंग आ जाता था; फिर भी मैं उसे पसन्द करता था। वह अगर एक दिन नहीं आती—एक दिन शरारत नहीं करती, तो मुझे ऐसा लगता था मानो वह बहुत दिनों से नहीं आई है!

छिपे-छिपे मैं उससे बहुत प्रेम करने लगा था। यह बात किसीको मालूम नहीं थी। बारह साल की उम्र की सुशीला भी नहीं जानती थी, क्योंकि उस समय वह प्रेम का मतलब नहीं समझती थी। मुझे याद है, एक दिन वह मेरा क़ीमती फ़ाउण्टेन-पेन तोड़ कर चुपके से ठीक स्थान पर रखकर भाग रही थी, और ठीक उसी समय मैं कमरे में पहुँच गया था। वह मारे

मेरी माँ के दोनों हाथ पकड़ कर रोते-रोते उन्होंने कहा—"वहिन ! दया करके मेरी सुशीला को तुम लो, फिर मैं निश्चिन्त होकर मकान और सामान वेचकर कर्ज़ अदा करूँ।"

माँ बोली—"मुझे. तो कोई एतराज़ नहीं...रमेश के बाबूजी से पूछ लूँ..."

मगर बाबूजी ने साफ़ इनकार कर दिया। वे अपने एकलौते लड़के की शादी ग़रीब खानदान में नहीं करना चाहते थे।

सहसा एक दिन मैंने सुना कि सुशीला के मामा आकर उन लोगों को ले गये। फिर उन्होंने मकान वग़ैरह वेचकर कर्ज़ अदा किया।

मैंने अब तक शादी नहीं की है। सबों के अनुरोध टालकर, सुशीला की कुमारी मूर्त्ति को चित्त में रखकर, मैं आज तक उसी का ध्यान कर रहा हूँ।

सात साल कैसे बीत गये, इसका मुझे ख्याल ही नहीं था। मैं स्थानीय कालेज में शिक्षक हूँ। कालेज में पढ़ाना और बाक़ी समय साहित्य में मग्न रहने के सिवा मेरा और कोई काम नहीं था। मेरी हृदयेश्वरी का कोई पता नहीं था: वह कहाँ गई है, जीवित है या नहीं यह मुझे मालूम नहीं। मेरे हृदय की नीरव वेदना मेरी रचना में आ जाती थी।

सहसा उस दिन सुशीला के साथ चौक में साक्षात हो गया। वह मुझको एकाएक नहीं पहिचान सकी, बोली—मेरा चेहरा बदल गया है। मगर मैंने उसे देखते ही पहिचान लिया था। सात साल तक उसे न देखने पर भी, उसके चेहरे ने मेरे हृदय को मलिन नहीं किया, बल्कि और दीप्त कर दिया था।

मैंने पूछा—"कहाँ रहती हो ?"

सुशीला बोली—"ज्यादा दूर नहीं है, पास ही रहती हूँ।"

मैं उसके इक्के पर बैठते हुये बोला—"चलो, तुम्हारा मकान देख लूँ..."

हेवेट रोड पर सुशीला ने इक्का छोड़ दिया और बादशाही मंडी की एक गन्दी गली में जाने लगी। उस गली में कुछ दूर पर एक छोटा-सा मकान दिखाकर सुशीला बोली—"वह मकान है।"

"वह मकान !" विस्मय से दोनों आँखें उठाकर मैंने उसी ओर देखा।

कितना खराब और गन्दा मकान था !"...मकान के सामने आ गया। इसी मकान में सुशाला रहती है यह देखकर मेरा हृदय दुःख से भर आया। मैंने सोचा, सुशीला यहाँ कैसे रहती है ?

दरवाजे के पास खड़ी होकर सुशीला बोली—"आओ, रमेश भैया ! अपने पति से तुम्हारा परिचय करवा दूं। वे तुम्हें देखकर बहुत खुश होंगे।"

सुशीला का पति ! मेरे हृदय के अन्दर कँपकँपी होने लगी, सिर में चक्कर आने लगा। सुशीला के पति मुझे देखकर खुश होंगे, मगर इससे मेरा क्या फ़ायदा है ?

मैंने कहा—"फिर किसी दिन आ जाऊँगा।"

मैं लौटा आ रहा था। एक बार पीछे मुड़ कर देखा—टेनिसन मेरी ओर ताक कर कुछ कह रहा था, और उसकी माँ उसकी बातों का जवाब दे रही थी।

सुशीला इतना सुन्दर लिख सकती है? पढ़ते-पढ़ते मुझे इच्छा हो रही थी कि इसे हृदय से लगा लूँ...इसका सैकड़ों बार चुम्बन करूँ।

मैंने उस कॉपी को ले लिया—पत्र-पत्रिकाओं में छपाऊँगा—सुशीला देवी का नाम जगत् में प्रसिद्ध कर दूँगा। मैं कल्पना में देखने लगा, सुशीला का नाम जगत् के सभी मनुष्यों की जबान पर है—वह मेरी ही सुशीला है! वह रामकुमार की पत्नी नहीं, टेनिसन की माँ नहीं, वह मेरी सुशीला थी—सिर्फ मेरी।

फिर आने का वादा करके मैंने विदा ली।

एक पत्रिका में एक कविता छपी—'टेनिसन की बाल्या-वस्था।' सुशीला ने सैकड़ों बार अपनी कविता पढ़ी, अपने बच्चे की ओर देखकर आँसू बहाये। रामकुमार ने अपने शीर्ण हृदय से टेनिसन को लगा कर, उसके ललाट पर स्नेह-चुम्बन का टीका लगा दिया।

शिशु टेनिसन ने दो दिन में उस कविता को रट लिया।

इस बच्चे पर केन्द्रित होकर उसकी माँ की कविता-रचना दिन-पर-दिन चलने लगी।

एक हफ्ते के बाद, एक दिन मुझे खबर मिली, रामकुमार की तबीअत बहुत खराब है।

मैं दौड़ा हुआ गया।

मगर रामकुमार को हम लोग नहीं बचा सके। पत्नी और पुत्र का बोझा मुझ पर डालकर वह चल बसा।

दबे हुये स्वर से सुशीला बोली—"अब मैं क्या करूँ, भैया?"

मैं मथुरा में रहने लगा। पत्रिका के सम्पादक का पत्र मिला—मैं कह आया था कि सुशीला देवी दो-चार दिनों में रचनायें भेजेंगी, मगर उन्हें अभी तक नहीं मिली थीं। मैं अगर उन्हें सुशीलादेवी का पता लिख भेजूँ, तो पत्र लिखकर या ख़ुद मिलकर रचनायें ले लेंगे।

सुशीला की रचनायें मैं अपनी इच्छानुसार पत्र-पत्रिकाओं में भेजता था, किसीको पता लगने नहीं दिया था कि सुशीला इतना क़रीब रहती हैं—वे चाहते तो उसके पास से रचनायें ले सकते थे।

मैं स्वार्थी था, इसीलिये कोई सुशीला से मिलना चाहेगा यह बात कल्पना में भी असहनीय थी। सुशीला को मैं छिपाकर रखना चाहता था, जिससे कोई उसके पास पहुँच न सके।

सम्पादक का पत्र पाते ही मैंने सुशीला को पत्र लिखा, मगर कोई जवाब नहीं आया। मेरे हृदय में कुछ घबराहट होने लगी। मैं उसे कई बार पत्र लिखने के लिये कहकर आया था, उसने पत्र क्यों नहीं लिखा?

मैंने तीन-चार पत्र सुशीला को लिखे कि मुझे जवाब दे या न दे—सम्पादक के पास रचनायें अवश्य भेज दे, नहीं तो मुझे झूठा बनना पड़ेगा।

छुट्टी ख़तम होते ही इलाहाबाद लौट आया। पहले ही सम्पादक से मुलाक़ात हुआ। मैंने पूछा—"क्यों साहब, रचनायें मिलीं?" वे निराशा के भाव से बोले—"नहीं जनाब! सुशीला देवीजी ने कोई रचना अभी तक नहीं भेजी है। उनका पता अगर लिखते, तो जैसे हो सकता मैं कविता ले लेता।"

वह बिलकुल बदल गई थी। एक महीना पहले, जिसे मैं देख गया था, क्या यह वही सुशीला है?—मैं चकित होकर सोचने लगा कि कैसे इस तरह का परिवर्त्तन हो गया?

वह बहुत क्षीण स्वर से बोली—"बैठो, रमेश भैया..."

मैंने चकित होकर कहा—"यहीं...?"

अँगुली से इशारा करके वह बोली—"वहां बैठो!"

मैं बैठा नहीं। बोला—"कमरे में चलो!"

उसने अपने आँसू रोकते हुये कहा—"कमरे में! मैं अब कमरे में नहीं रहती हूँ रमेश भैया—मैं यहीं रहती हूँ।"

"यहीं रहती हो! और टेनिसन?"

वह अपनी दृष्टि मेरे चेहरे पर फेंककर बोली—"उसे हृदय में जकड़कर मैं यहाँ पड़ी हूँ, रमेश भैया! मेरा लाल सो गया है—उसे जलाकर राख नहीं कर सकी—"यहीं ज़मीन के अन्दर लिटा दिया है। मैं उस पर छाती रखकर पड़ी हूँ, रमेश भैया...माँ के हृदय में न रहने से उसे डर लगेगा।"

मैं उसकी ओर एकटक ताकता रहा...एक शब्द भी मेरी ज़बान से नहीं निकला।

"वह पुकार रहा है, रमेश भैया,—वह पुकार रहा है—अम्माँ!—नहीं, तुम नहीं सुन पाओगे, क्योंकि तुम उसे चाहते नहीं थे! कविताओं की इस कॉपी से उसे बहुत प्रेम था—मैं इसे उसके पास रखना चाहती थी—मगर नहीं रख सकी। रमेश भैया, मेरा सब समाप्त हो गया है। जब मेरे पति मरे तब मेरे सामने था टेनिसन. उसे घेरकर मेरी कल्पना दौड़ रही थी... आज मैं किसके आधार पर लिखूँ—मेरा कल्पना का झरना सूख गया है!"

अन्धा

मैं अन्धा हूँ—जन्मान्ध नहीं, एक ही साल से अन्धा हो गया हूँ। दृष्टि न रहने से कैसा दुःख होता है, यह मेरी समझ में आ रहा है। यही एक साल मानो सौ साल की तरह दीर्घ मालूम हो रहा है। स्मृति आज भी पुरानी नहीं हुई है। अन्ध व्यक्ति की स्मृति बहुत तीक्ष्ण है, इसलिए आज भी उस अतीत के चक्षुष्मान् जीवन की बातें रह-रहकर याद आ रही हैं; यह विचित्र सौन्दर्यपूर्ण हरित पृथ्वी, उषा की गुलाबी विमल विभा, शरद् चन्द्र किरण से उजियाली स्निग्ध शोभा और सृष्टि की श्रेष्ठ सम्पद नर-नारी के प्रफुल्ल मुख—विश्व के सभी पदार्थों पर विधाता ने एक साल पहले जो परदा डाल दिया है, वह इस जीवन में और उठेगा नहीं! अँधेरा—चारों ओर अमावस्या का घना अँधेरा! चक्षुहीन का दुःख शब्दों में कहा नहीं जा सकता। मेरी दृष्टि कैसे चली गई, क्या सुनना चाहते हो? सुन लो, तो समझोगे कि मेरी तरह हतभाग्य संसार में कोई नहीं है।

मेरे पिता बहुत गरीब थे। रेलवे के टिकट कलक्टर का काम करते थे। मेरी माताजी लक्ष्मी जैसी गुणवती थीं। उन्हीं की वजह से पिताजी की कम आमदनी में भी हम लोग बहुत सुखी थे। बचपन में कुसङ्ग में पड़कर मैंने पढ़ना छोड़ दिया और आवारा की तरह दिन काटता था। मैं अपने माँ-बाप की एकमात्र सन्तान था और उन लोगों का मुझ पर काफी प्यार था, इसलिए वे स्नेह-वश हमारे सारे अपराधों को क्षमा करते थे।

नहीं थी। उनके एक रिश्तेदार प्रयाग के सरकारी छापाखाना के मैनेजर थे। ससुर साहब मेरे लिये उनसे खुशामद करने लगे।

खैर, कम्पाज़ीटर की नौकरी मिल गई। तीन महीना तक तो तनख्वाह नहीं मिली, चौथे महीने से पन्द्रह रुपया मिलने लगा। मैं इस नौकरी से बहुत खुश था। हमारे जान-पहिचान के कई एक युवक एण्ट्रेन्स पास करने पर भी मारे-मारे फिर रहे थे। कभी-कभी दो-चार घण्टा ज्यादा काम करना पड़ता था, मगर इसके लिये मुझे ज़रा भी दुःख नहीं था। दो-पैसा ज्यादा आमदनी के लिये इनसान हर तरह के कष्ट उठा सकता है। मैं भी सुख की आशा में आकृष्ट होकर कभी भी मेहनत से नहीं डरता था।

पत्नी को और कितने दिनों तक मायके में रक्खें? मैंने निश्चय कर लिया कि इस आमदनी में हम दोनों किसी तरह गुजर कर लेंगे। कीटगंज में तीन रुपया किराये पर एक मकान लिया और रहने लगे। रुपये-पैसे की कमी की वजह से हम लोगों का सात्विक सुख नष्ट नहीं हुआ, क्योंकि स्थायी गरीबी में हम लोग पाले गये थे। परमात्मा ने जो कुछ सुख भाग्य में लिख दिया है, उन्हें उसी के लिए हृदय खोलकर धन्यवाद दिया। तब हृदय में यह विश्वास था कि परमात्मा दयालु है।

कुछ दिन के पश्चात्—कितने दिन पश्चात यह याद नहीं है, कीटगंज में जब से रहने लगे थे—उसके कई साल पश्चात्—एक दिन हमारे सहयोगी कम्पोज़ीटर के भाई की शादी में हम लोगों को दावत के लिए बुलाया गया। यह कम्पोज़ीटर साहब हमारे घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने खास ज़िद करके कहा कि मेरी पत्नी को भी लाना पड़ेगा—कोई इनकार सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ।

चक्कर काटने लगा! मानो मुझे होश ज़रा भी नहीं रह गया।

निराशा की सान्त्वना से हृदय को शान्त करना पड़ा। कैसे हार खो गया, यह पूछने पर पता लगा कि उसका जोड़ कमज़ोर रहने के कारण एक वार ज़मीन पर गिर पड़ा था, इसलिए सुलोचना यह सोचकर उसे एक तकिए के नीचे रखकर काम कर रही थी कि उसके अनजान में गिर न पड़े। फिर काम में ऐसी तन्मय हो गई कि हार की याद ही न रही। जब अपने मकान को आने लगी तब देखा कि उस स्थान से हार ग़ायब है। बहुत ढूँढ़ा गया, फिर भी नहीं मिला। हृदय के आग्रह से अगर खोई हुई चीज़ मिल जाती, तो मृत पुत्र के लिए जननी का रोदन व्यर्थ क्यों होता?

एक बात मुझे और दुःख दे रही थी। बनर्जी बाबू को अगर मैं खो जाने की बात कहूँ तो क्या वह विश्वास कर लेंगे? मैं ग़रीब हूँ; उनका और उनकी पत्नी का अगर यह ख्याल हो कि मैंने हार बेचकर खा डाला है तो कैसे उन्हें विश्वास करवा सकता हूँ कि सचमुच हार खो गया है। पुलिस आकर मकान तलाशी ले तो कितनी बेइज्ज़ती होगी! मगर दो सौ रुपये में हार भी बनवा देना हमारे लिए बिलकुल असम्भव बात है। कोई भी चारा नहीं दीख पड़ता है। एक ओर अपनी इज्ज़त और अपने कर्त्तव्य थे और दूसरी ओर जीवन का बलिदान करते हुए भी इज्ज़त और कर्त्तव्य को क़ायम रखने का निश्चय कर लिया। मैंने सुलोचना से कहा, "हार खो जाने की बात तुम किसीसे न कहना।"

देखते-देखते दिन चढ़ने लगा। मैं चिंता-समुद्र में डुबकी लगाने लगा। हार कहाँ से लाऊँ? मेरी पत्नी एक कोने में अपराधिनी की तरह बैठी थी।

रात को छोटे बाबू के मकान पर नहीं गया—घर लौट आया। मैंने घर आकर देखा, मेरी स्त्री उसी स्थान पर बैठी हुई है। इन्हीं दो दिनों में उसके शरीर का आधा खून सूख गया है। मेरा मानसिक कष्ट तो था ही तिस पर उसकी अवस्था देखकर मेरा हृदय फटने लगा। मैंने उसका हाथ पकड़कर उठाया और सान्त्वना देकर उससे, जो कुछ मैं करना चाहता था, कहा। यह सुनकर उसने कहा—"यह क़र्ज़ कैसे अदा होगा?"

मैंने कहा—"सुलोचना, तुम चिंता न करो। अगर मेरी ये दोनों आँखें ठीक रहें, तो एक साल के अन्दर मैं पूरा कर दूंगा। दुगुना परिश्रम करूँगा। तुम्हारा चित्त अगर प्रफुल्लित दीख पड़े तो मैं मेहनत को मेहनत नहीं समझूंगा। तुम ज़रा भी न घबराओ।"

सुलोचना ने एक गहरी सांस लेते हुए कहा—"मैं सब समझ गई; इज्ज़त रखने के लिए तुम अपना सुख, अपना शरीर, सब नष्ट करना चाहते हो। मैंने तुम्हारा सत्यानाश किया!" उसके प्रत्येक वाक्य में निराशा तथा वेदना भरी हुई थी।

दूसरे दिन सुबह छोटे बाबू के मकान पर जाकर एक सौ चालीस रुपये क़र्ज़ लिया। छोटे बाबू [illegible] ज़्यादा सूद लेते थे इसलिए कम्पोज़ीटर लोग इन्हें [illegible] कहते थे। खैर कुछ भी हो, मैं उनको बुरा न कहूँगा—क्योंकि उन्होंने ऐसे मौके पर जीवन-दान दिया है कि [illegible] तुम [illegible] पर मुझे [illegible] जायगा। मशीन में दो रुपया [illegible] पर रुपया लिया। [illegible] पर मैंने लिख दिया था कि मशीन से [illegible] की किस्त से [illegible] से रुपया अदा करूँगा। अपनी परिस्थिति बिलकुल न [illegible] किसी बात की चिंता न करते हुए छोटे बाबू के सौ

चिन्ताएँ क़र्ज़ अदा करने की कठोर व्रत-साधना समझकर, कठिन से कठिन काम करने के लिए तैयार हो गया। जो कुछ मैं करने लगा, इससे ज़्यादा कोई कर सकता है, यह मैं विश्वास नहीं कर सकता था।

जिस मकान में हम लोग रहते थे, वह छोड़कर सवा रुपया के किराए पर एक दूसरा मकान लिया। एक वक़्त खाने लगे। शाम को काम से लौटकर सिर्फ़ सूखी रोटी खाते थे—दाल बनाने की हिम्मत नहीं होती थी। भर पेट नहीं खाते थे, जिससे ख़र्च कम हो। शाम को ६ बजे से 'लीडर' में काम करते थे। वहाँ पूरा छः घण्टा काम करके बारह बजे घर लौटते थे।

बहुत दुःख के दिन भी बीत जाते हैं, मेरे भी बीत जाने लगे। मगर ओफ़! मैं ही जानता हूँ, दिन कैसे बीतने लगे! दिन पर दिन मेरी देह दुर्बल होने लगी—मानो तपेदिक हो गया हो। फिर भी मैंने अपने को विचलित नहीं होने दिया। छः महीना पश्चात् मुझे सर-दर्द की बीमारी हो गई। दिनों रात सर चक्कर काटता रहा। इसी तरह आठ महीना बीत गया।

ख़ैर, परमात्मा को धन्यवाद! मैंने छोटे बाबू का पूरा क़र्ज़ अदा कर दिया। क़र्ज़ अदा करने के बाद मन में तो शान्ति मिली, मगर शरीर का पतन हो गया था। जिस उत्साह से इतने दिनों तक मैंने मेहनत की थी, वह उत्साह आज ख़तम हो गया है। शाम को घर पहुँच कर श्रान्त देह को बिछौने पर फेंक दिया।

दूसरे दिन सुबह बिछौने से नहीं उठा जाता। मुझे मालूम पड़ा कि देह का सारा ख़ून निकल गया है। बहुत कठिनाई

मैंने तुमसे भी बूढ़े कम्पोजीटरों को देखा है, जिनकी दृष्टि शक्ति अभी तक वर्तमान है।"

बनर्जी बाबू की बातों को सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ। मैंने मन ही मन कहा, बाबू साहब, तुम्हें क्या मालूम मैंने किस प्रकार का अत्याचार इन आँखों पर किया है! किन्तु अब यह कहना फिजूल है। मैं चुपचाप बैठा रहा।

बनर्जी बाबू प्रश्न पर प्रश्न करते गये। न जाने क्यों, मेरी दृष्टि चले जाने के पश्चात् उनका मेरे प्रति स्नेह बहुत ज्यादा हो गया था। उनका शान्त मुख मुझे दीख नहीं पड़ता था किन्तु उनकी करुणा से आर्द्र कण्ठस्वर मैं हृदय में अनुभव करता था।

उनके आग्रह से मैं सारी बातें कहने लगा। कहते-कहते मैं रो पड़ा। मुझे बात खतम करने नहीं दी—बीच में ही बनर्जी बाबू ने कहा, "रामदयाल, मैंने ही तुम्हारे जीवन के प्रधान रत्न को अपने हाथों से नष्ट किया है। हाय, हाय! मैंने क्यों नहीं तुमसे कह दिया था कि वे गहने पीतल के थे!...तुम्हें दृष्टि दिलवाना अब सम्भव नहीं, मगर हम और हमारा पराना तुम और तुम्हारी स्त्री के लिए—जब तक जिन्दा रहोगे, भोजन का प्रबन्ध करेगा। तुम मुझे क्षमा करो।" कहकर वृद्ध ने दोनों हाथों से मुझे पकड़कर हृदय से लगा लिया।

मगर मेरी सान्त्वना का अवलम्बन एक क्षण में विलुप्त हो गया! मेरी दृष्टि लेकर परमात्मा ने अनन्त दुःख तो मुझ पर लाद दिया है, अब मुझे मृत्यु-दान करें जिससे मेरा तरह असहाय, पराश्रित, हतभाग्य अन्धे को शान्ति मिले। परमात्मा! क्या यह तुम्हारे दरबार में दुर्लभ है?

विरुद्ध ऐसा कार्य करना बहुत बुरा हुआ है, लेकिन मैं अपने चित्त को किसी तरह भी सम्हाल नहीं सका। इसके लिये आप बहुत नाराज़ होंगे, दुःखित होंगे—पर पिताजी, आप मुझे क्षमा कर दीजिये। आप यदि मुझसे रत्ती भर भी स्नेह करते हों, तो आप अवश्य क्षमा कर देंगे। मेरे इंगलैंड जाने की बात पर लोग क्या कहेंगे, इस पर आप ध्यान न दीजिये। विश्वास रखिये कि मैं अपना धर्म नहीं नष्ट करूँगा—हिन्दू-धर्म के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करूँगा।

—आपका सुरेन्द्र"

पत्र पढ़कर गोपीचन्द ने कहा—"हाँ, बात तो बड़ी समस्या की है! जो हुआ सो हुआ—अब सोचने से क्या हो सकता है। इसमें चिन्ता की बात भी कुछ नहीं है—सुरेन्द्र तो बालक नहीं है। और अगर आप मन में व्यर्थ दुःख, क्रोध और चिन्ता लायँगे, तो फिर आपकी तबीअत ख़राब होगी। डाक्टर..."

राजेन्द्रसिंहजी बोले—"अब मौत आये, तो चैन मिले गोपीचन्द!...वह बालक नहीं है सो ठीक है, लेकिन मेरे निकट तो वह बच्चा ही है। जब उसकी माँ मरी, उसकी उम्र तब पाँच साल की थी। उसके ही लिये मैंने दूसरी शादी नहीं की। पन्द्रह साल की उम्र में उसकी शादी कमला-सी सुन्दरी कन्या से कर दी—और अब तक वह पढ़ भी रहा है, इसलिये कि वह सब तरह से सुखी हो—सब उसकी मन-चाही हो। हाय, आख़िर मेरे इतने लाड़ और जतन का यह नतीजा हुआ!"

राजेन्द्रसिंहजी पुराने ख़याल के आदमी हैं। अंग्रेज़ी राज-शासन ही नहीं, अंग्रेज़ी भाषा पर भी उनका विद्वेष था। अंग्रेज़ों को म्लेच्छ मानते थे। एकमात्र पुत्र का योरप जाना इनके लिये असह्य था। इस आघात से इनके मर्मस्थल पर चोट [illegible]।

कि स्वयं रसोई करके भोजन करने पर व्यर्थ समय तथा स्वास्थ्य दोनों ही नष्ट होंगे। वे कभी-कभी इसके लिये टिप्पणी भी करने लगीं। सुरेन्द्र को क्रमशः उनकी बातों की सत्यता समझ में आने लगी और उसका विचार भी क्रमशः ढीला पड़ने लगा। एक दिन मेरी ने सुरेन्द्र को होटल में भोजन करने के लिये विशेष रूप से अनुरोध किया। सुरेन्द्र मेरी की बात टाल नहीं सका। मेरी बहुत सुन्दरी है, तिस पर बड़ी मीठी बोलनेवाली और विदुषी है। वह कैसे उसका अनुरोध टाल सकता है?

मेरी सुरेन्द्र को प्रथम बार देखकर ही प्रेम (?) करने लगी थी। पर जब वह परिचय से जान सकी कि सुरेन्द्र एक धनी की सन्तान है तब उसका प्रेम, नदी में बाढ़ की तरह शतधारा में बहने लगा। उसने तीन-चार बार 'कोर्टशिप' किया, पर उसने ऐसा मनचाहा युवक नहीं पाया था। वह छाया की तरह सुरेन्द्र के पीछे पड़ गई। सुरेन्द्र यह सब कुछ भी नहीं जान सका, या जानने पर भी उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

सुरेन्द्र ने लन्दन में पहुँचकर पिता और पत्नी को दो पत्र लिखे। अपने पिता से कोई उत्तर नहीं पाया, केवल कमला के पत्र से उसे वसीयतनामा और पिता के सख्त बीमार पड़ने की बात मालूम हुई। उक्त खबर से वह विचलित हुआ—पश्चात्ताप होने लगा, पर कोई उपाय नहीं था। उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि पिता को अच्छा कर दे। वसीयतनामे की बात ने उसे कुछ भी विचलित नहीं किया: उसे धारणा थी कि स्नेहमय पिता के सामने जा पहुँचने पर वे वसीयतनामा बदल देंगे। फिर सुरेन्द्र प्रति डाक से पत्र लिखता—कमला भी प्रति डाक से जवाब देती थी। दोनों अंगरेज़ी भाषा में पत्र लिखते थे। कमला को भय होता था कि कहीं हिन्दी में

पास भेज दूँ या यहीं सत्कार कर दूँ ।" मेरी को विश्वास था कि हिन्दू लोग एक जगह से शव को ले जाकर शव को गड़ा कर सत्कार नहीं करते हैं। उसकी यह धारणा भी गलत नहीं थी। जवाब मिला—"मृत-देह भेजने की आवश्यकता नहीं है, वहीं सत्कार करो।" मेरी ने इस तार को फाड़ डाला और स्काटलैंड में पत्र लिखकर अपने एक मित्र के द्वारा सुरेन्द्र नाम से एक तार भेजवाया, उसका भावार्थ था:—"तुम्हारी पत्नी दो-तीन महीने से बीमार थी, एक सप्ताह हुआ उसकी मृत्यु हुई है।" यह तार सुरेन्द्र को मिल गया। उसने देखा कि गोपीचन्द ने तार भेजा है, पर कहाँ से वह तार आया है यह बिलकुल ही लक्ष्य न करके एक ठंढी साँस फेंककर वह आराम-कुरसी पर लेट गया।

इस घटना के बाद सुरेन्द्र ने यह निश्चय कि वह घर नहीं लौटेगा, जीवन का अवशिष्ट भाग इंगलैंड में ही काटेगा। एक दिन बातचीत में सुरेन्द्र ने इस तरह की बात मेरी से प्रकट की।

मेरी को बहुत आनन्द होने लगा। उसका कौशल सफल हुआ। उसने हाथ बढ़ा कर स्वर्ग पाया। वह समझी कि यही ठीक मौका है; इसी समय सुरेन्द्र से विवाह कर सकने पर उसका काम बन जायगा। सुरेन्द्र चाहे जितनी प्रतिज्ञा क्यों न करे, कभी उसे हिन्दुस्तान लौटना ही पड़ेगा। और तब मेरी भी उसके साथ जायेगी। स्वदेश लौटकर जब वह देखेगा कि उसकी पत्नी जीवित है, तब वह मेरी को अनेक धन देकर तुष्ट करने को बाध्य होगा। मेरी भविष्य के आनन्द से भर उठी।

(४)

इस घटना के बाद एक वर्ष व्यतीत हो गया। अब सुरेन्द्र का पढ़ने में मन नहीं लगता। वह एक दिन आराम-कुरसी पर

मेरी ने निस्तब्धता भंग करके सुरेन्द्र से कहा—"तुम्हारे कमरे में बिना पूछे मैं आ गई हूँ, इसके लिये क्षमा करना।"

सुरेन्द्र ने मेरी को देखकर नींद से जागृत-सा उठकर, बैठकर कहा—"मेरी, कोई अपराध न लेना, मैं एक विषय पर विशेष भाव से चिन्तित था। बैठ जाओ।"

मेरी बोली—"धन्यवाद। अब, क्या मैं तुमसे पूछ सकती हूँ कि तुम क्यों इतना दुःखित दीख रहे हो? स्वदेश से कोई दुःखदाई खबर तो नहीं आई है?"

सुरेन्द्र ने कहा—"बुरी या भली खबर कहाँ से आयेगी, मेरी! दुनिया में मेरा अपना है ही कौन? दुनिया से मैंने सब खो दिया है।"

मेरी बोली—"तुम्हारी बात सुनकर मुझे बहुत दुःख हो रहा है। क्या तुम्हें ढाढ़स देने को भी कोई नहीं है?"

"नहीं।" कहकर सुरेन्द्र रो पड़ा।

"जब तुम्हें दुःख हो रहा है तब यह कहने की आवश्यकता नहीं है।"

सुरेन्द्र बोला—"मुझे दुःख होना ही नहीं चाहिये—जब मैंने अपनी इच्छा से सब त्याग किया है तब दुःख करने से फ़ायदा क्या! पाप का प्रायश्चित्त कौन करेगा? फ़िलहाल मैंने निश्चय किया है कि इसी हफ़्ते के जहाज़ से घर जाऊँगा।"

मेरी का चेहरा सफ़ेद हो गया। वह उद्वेग तथा घबराहट के साथ कह उठी—"इसी जहाज से! नहीं, नहीं, अब तुम वहाँ जाकर क्या करोगे?"

"मैं जाने के लिये बाध्य हो रहा हूँ।"

"तुम्हारे पास तो रुपया है—"

"हाँ, सो तो काफ़ी है।"

तो क्या वह अपने पिता की सम्पत्ति से स्वदेश का कोई उपकार नहीं कर पाता ? फिर वह सोचने लगा—उसके ही व्यवहार से उसकी पत्नी अकाल में मर गई, पिता भी न जाने जीवित या मृत हैं। इन चिन्ताओं से उसका हृदय फट जाने लगा। तेरह दिनों तक इसी तरह के नाना मानसिक रोग भोगते हुये सुरेन्द्र बम्बई बन्दरगाह में जहाज से उतरा।

जहाज से हिन्दुस्तान की जमीन पर पैर धरते ही उसका हृदय थर-थर काँप उठा। भयानक आशंकायें उसके हृदय के चारों कोनों से झाँकने लगीं। वहाँ जाकर वह क्या देखेगा ?

(६)

अपना सब सामान स्टेशन मास्टर के जिम्मे रखकर वह एक ताँगे पर अपने बँगले की ओर चला। दूर से अपने घर की हालत देखकर सुरेन्द्र चकित हो गया। कहाँ उसने सोचा था कि बँगले के फाटक का ताला बन्द रहेगा, और यह क्या ! मकान का फाटक रंगीन कागजों और पत्तों से सजाया हुआ है: मकान के भीतर से अंग्रेजी बाजे का शब्द आ रहा है ! तब क्या उसके पिता जीवित हैं—उसके पिता के किसी मित्र ने इंगलैंड से उन्हें उसके लौटने की खबर तार से भेजी है और उसके ही लौट आने के लिये ऐसा आनन्द मनाने का इन्तजाम हुआ है ? इसी तरह नाना बातें सोचते-सोचते सुरेन्द्र का ताँगा फाटक के सामने आ गया। ताँगे से उतरकर ताँगेवाले को पैसे देकर वह भीतर जाने लगा कि फाटक पर खड़े दरबान ने उसे रोककर पूछा—" 'पास' है न आपके पास ?"

सुरेन्द्र ने कहा—" 'पास' ? कैसा 'पास' ?"

उसने कहा—"आज यहाँ नाटक है। बिना पास के भीतर जाना मना है—इसमें मेरा कोई कुसूर नहीं है सरकार !"

आपस में फुस-फुसाकर बहुत ही धीमे स्वर से बातें कर रहे हैं। उस बात-चीत में 'कमला' नाम उसके कानों में पहुँचा। तब सुरेन्द्र ने बहुत ही ध्यान से उनकी बातें सुनने की चेष्टा की। एक ने कहा—"कमला का यह उचित नहीं हुआ।"

दूसरे सज्जन ने कहा—"इसमें भला कोई शक है! सुरेन्द्र की मौत को अभी एक साल ही हुआ है।"

उनकी बात-चीत सुनकर सुरेन्द्र चौंक उठा। 'सुरेन्द्र की मौत को अभी एक साल हुआ है!' 'कमला का यह उचित नहीं हुआ!' तब क्या कमला अब भी जीवित है! यह हो सकता है कि गोपीचन्द ने उसे स्वदेश लौटाने के लिये कमला की मृत्यु होने की झूठी खबर भेजी थी।

सुरेन्द्र सब सही खबर जानने के लिये बहुत व्याकुल हो उठा। इसी समय अपने पुराने मित्र प्रकाश के घर जाकर सब बातें मालूम करने के लिये वह कुरसी से उठ पड़ा। सहसा उसने देखा कि कोने के—उसीके कमरे की खिड़की पर एक युवती खड़ी है। बहुत ही आश्चर्य से देखा कि वह कमला ही है! तब वह आत्म-विस्मृत होकर बरामदे के जीने पर चढ़ कर कमला की ओर जाने लगा। मकान का एक नौकर एक अपरिचित व्यक्ति को जनानखाने में जाते देखकर—"कौन हैं, भीतर कहाँ जा रहे हैं!" कहकर शोर करता हुआ आने लगा। उसके शोर से गोपीचन्द तथा और कई आदमी जनानखाने की ओर बढ़े—सुरेन्द्र तब तक कमला के कमरे में पहुँच गया। उसने एकदम कमला को हृदय में चिपका कर आवेग से कहा—"कमला! कमला! तुम अभी तक जीवित हो! कहो कि सचमुच तुम जीवित हो!"